सन्मति प्रकाशन नं० ८

भारत के प्राचीन जैन तीर्थ

डॉ० जगदीशचन्द्र जैन
M A , Ph D.



जैन संस्कृति संशोधन मण्डल
बनारस-५

१९५२

प्रकाशक—
मंत्री, जैन संस्कृति संशोधन मण्डल
बनारस—५.

दो रुपया

मुद्रक—
रामकृष्ण दास
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रेस, काशी ।

निवेदन

भारतीय इतिहास की सामाजिक और राजनैतिक सामग्री जो प्राचीन जैन ग्रन्थो मे बिखरी पडी है उसका उपयोग करके डॉ० जगदीशचन्द्र जी ने प्राचीन भारत के विषय मे अपनी पुस्तक अग्रेजी मे लिखी थी। उक्त पुस्तक के लेखन के समय भारत के प्राचीन नगरो के विषय में जो सामग्री उन्हे जैनागम और पालिपिटको मे मिली उसी के आधार पर प्रस्तुत पुस्तक उन्होने लिखी है। पुस्तक का नाम यद्यपि 'भारत के प्राचीन जैन तीर्थ' दिया है तथापि यह पुस्तक केवल जैनो के लिए ही नही किन्तु भारतीय प्राचीन इतिहास और भूगोल के पडितो के लिए भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी इसमें तनिक भी सदेह नही। क्यो कि इसमे जैन तीर्थों के नाम से जिन नगरो का वर्णन किया है वह वस्तुत भारतवर्ष के प्राचीन नगरो का ही वर्णन है।

लेखक ने, जहाँ तक सभव हुआ है, उन प्राचीन नगरो का आज के नकशे मे कहाँ किस रूप से स्थान है यह दिखाने का कठिन कार्य करके प्राचीन इतिहास की अनेक गुत्थियो को सुलझाने का सफल प्रयत्न किया है। इससे जैनो को ही नही किन्तु भारतीय इतिहास के पडितो को भी नई ज्ञानसामग्री मिलेगी। इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक का महत्त्व बहुत बढ गया है।

पुस्तक मे भगवान् महावीर कालीन भारत का और भगवान् महावीर के विहार स्थानो का भी नकशा दिया गया है। उसका आधार उनकी उक्त अग्रेजी पुस्तक है। हमारी इच्छा रही कि पुस्तक मे कुछ चित्र भी दिए जाते किन्तु मडल की आर्थिक मर्यादा को देख कर वैसा नही किया गया। डॉ० जगदीशचन्द्र ने प्रस्तुत पुस्तक मडल को प्रकाशनार्थ दी एतदर्थ मै उनका आभार मानता हूँ।

ता० ८-२-५२
बनारस-५



निवेदक
दलसुख मालवणिया
मंत्री,
जैन सस्कृति सशोधन मडल

विषयानुक्रम

मानचित्र

प्रास्ताविक

इतिहास से पता चलता है कि अन्य विज्ञानों की तरह भूगोल का विकास भी शनैः शनैः हुआ। ज्यों ज्यों भारत का अन्य देशों के साथ वनिज-व्यापार बढ़ा, और व्यापारी लोग वाणिज्य के लिये सुदूर देशों में गये, उन्हें दूसरे देशों के रीति-रिवाज, किंवदन्ति कहानियाँ आदि के जानने का अवसर मिला, और स्वदेश लौट कर उन्होंने उस ज्ञान का प्रचार किया। वर्ष में आठ महीने जनपद-विहार के लिये पर्यटन करने वाले जैन, बौद्ध आदि श्रमणों तथा परिव्राजकों ने भी भारत के भौगोलिक ज्ञान को वृद्धिगत किया। जैन आगम ग्रन्थों की टीका-टिप्पणियों तथा बौद्धों की अट्ठकथाओं में उत्तरापथ, दक्षिणापथ आदि के रीति-रिवाज, रहन-सहन, खेती-बारी आदि के सम्बन्ध में जो उल्लेख आते हैं उनसे उक्त कथन का समर्थन होता है।

खोज-बीन से पता लगता है कि जिस भूगोल को हम पौराणिक अथवा काल्पनिक समझते हैं वह सर्वथा काल्पनिक प्रतीत नहीं होता। उदाहरण के लिये, जैन भूगोल की नील पर्वत से निकल कर पूर्व समुद्र में गिरनेवाली सीता नदी की पहचान चीनी लोगों की सि-तो (*Si-to*) नदी से की जा सकती है, जो किसी समुद्र में न मिलकर काशगर की रेती में विलुप्त हो जाती है। इसी तरह बौद्ध ग्रन्थों से पता लगता है कि जम्बुद्वीप भारतवर्ष का और हिमवत हिमालय पर्वत का ही दूसरा नाम है। ज्ञाताधर्म कथा के उल्लेखों से मालूम होता है कि प्राचीन काल में हिन्द महासागर को लवणसमुद्र कहा जाता था। इसी प्रकार खोज करने से अन्य भौगोलिक स्थानों का पता लगाया जा सकता है।

बात यह हुई कि आजकल की तरह प्राचीन काल में यात्रा आदि के साधन सुलभ न होने के कारण भूगोल का व्यवस्थित अध्ययन नहीं हो सका। परिणाम यह हुआ कि जब दूरवर्ती अदृष्ट स्थानों का प्रश्न आया तो संख्यात, असंख्यात योजन आदि की कल्पना कर शास्त्रकारों ने कल्पना-समुद्र में खूब

गीत लगाये, जिसमें आगे चल कर भूगोल भी धर्मशास्त्र का एक अङ्ग बन गया और वह केवल श्रद्धालु भक्तों के काम की चीज रह गई।

प्राचीन तीर्थों के विषय में चर्चा करते हुए दूसरा महत्त्वपूर्ण बात दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के सम्बन्ध में है। आचारांग आदि जैन सूत्रों से स्पष्ट है कि महावीर के समय सचेल और अचेल दोनों प्रकार के श्रमण जैन संघ में रह सकते थे, यद्यपि स्वयं महावीर ने जिनकल्प—अचेलत्व—को ही अंगीकार किया था। उत्तराध्ययन सूत्र के अन्तर्गत केशी-गौतम संवाद नामक अध्ययन में पार्श्वनाथ के शिष्य केशीकुमार के प्रश्न करने पर महावीर के गणधर गौतम स्वामी ने उत्तर दिया है कि 'हे महामुने, मोक्ष की सिद्धि में लिङ्ग—वेष—केवल बाह्य साधन है, असली तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र है।'

जान पड़ता है कि महावीर के बाद भी जैन श्रमणों में अचेल (दिगम्बर) रहने की प्रथा जारी रही। श्वेताम्बर ग्रन्थों से पता लगता है कि आचार्य स्थूलभद्र के शिष्य आचार्य महागिरि ने आर्य सुहस्ति को अपने गण का भार सौंप कर जिनकल्प धारण किया। इसी प्रकार आर्यरक्षित ने जब अपने कुटुम्ब को दीक्षा देनी चाही तो उनके पिता ने दीक्षा ग्रहण करते हुए सकोच व्यक्त किया कि उन्हें अपनी पुत्री और पुत्र-वधुओं के समक्ष नग्न अवस्था में रहना पड़ेगा। तत्पश्चात् बृहत्कल्प भाष्य (ईसवी सन् की लगभग चौथी शताब्दि) से पता लगता है कि महाराष्ट्र में जैन श्रमणों के नग्न रहने की प्रथा थी और इन्हें लोग अपशकुन मानते थे।

भारतीय मूर्ति-कला के अध्ययन से पता लगता है कि सबसे पहले मौर्य-कालीन यक्षों की मूर्तियाँ निर्माण की गई थीं। जैन और बौद्ध सूत्रों में अनेक यक्ष-मन्दिरों (यक्षायतन) के उल्लेख मिलते हैं जहाँ महावीर और बुद्ध अपने विहार-काल में ठहरा करते थे। ये यक्ष ग्राम या नगर के रक्षक माने जाते थे। छोटे-बड़े सब लोग इनकी पूजा-उपासना करते थे। यक्षों में सबसे प्राचीन मूर्ति मणिभद्र (प्रथम शताब्दि ई० पू०) की उपलब्ध हुई है। यक्षों के पश्चात् बोधिसत्त्व, बुद्ध और जिन की मूर्तियाँ निर्माण की जाने लगीं। राजा कनिष्क के समय की ये मूर्तियाँ मथुरा में उपलब्ध हुई हैं। बोधिसत्त्व की प्राचीनतम मूर्ति ईसवी सन् ८ की मिली है। मथुरा के कङ्काली टीले में जो आयाग पट पर लगभग २००० वर्ष प्राचीन जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ मिली हैं वे नग्न अवस्था में हैं तथा दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों द्वारा पूजी जाती

है। इससे स्पष्ट है कि ईसवी सन के पूर्व दिगम्बर और श्वेताम्बर मूर्तियों में कोई अन्तर न था। वस्तुतः उस समय तीर्थंकरों या सिद्धों के चरणों की पूजा होती थी। सम्मेदशिखर, हस्तिनापुर आदि तीर्थ-क्षेत्रों पर आजकल भी चरण-पादुकायें ही बनी हुई हैं। वास्तव में प्राचीन काल में जो शिल्पकला द्वारा बुद्ध-जीवन के चित्र अङ्कित किये गये हैं वे बोधिवृक्ष, छत्र, पादुका और धर्मचक्र आदि रूपों द्वारा ही व्यक्त किये गये हैं, मूर्ति द्वारा नहीं।

१७वीं सदी के श्वेताम्बर विद्वान पण्डित धर्मसागर उपाध्याय ने अपनी **प्रवचनपरीक्षा** में लिखा है कि जब गिरनार और शत्रुंजय तीर्थों पर दिगम्बर और श्वेताम्बरों का विवाद हुआ और दोनों स्थानों पर श्वेताम्बरों का अधिकार हो गया तो आगे कोई झगड़ा न होने देने के लिए श्वेताम्बर संघ ने निश्चय किया कि अब से जो प्रतिमायें बनवाई जायें, उनके पादमूल में वस्त्र का चिह्न बना दिया जाये। उस समय से दिगम्बरियों ने भी अपनी प्रतिमाओं को स्पष्ट नग्न बनाना शुरू कर दिया। इससे मालूम होता है कि उक्त विवाद के पहले दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायों की प्रतिमाओं में कोई भेद नहीं था, दोनों एकत्र होकर पूजा-उपासना करते थे। इतना ही नहीं, उस समय एक ही मन्दिर में इन्द्रमाला की बोली बोली जाती थी जिसे दोनों सम्प्रदाय के लोग पैसा देकर खरीदते थे।

तपागच्छ के श्वेताम्बर मुनि शीलविजय जी ने वि० सं० १७३१-३२ में दक्षिण की यात्रा करते हुए अपनी तीर्थमाला में जैनबद्री, मूडबिद्री, कारकल आदि दिगम्बरीय तीर्थों का परिचय दिया है। इससे मालूम होता है कि उन्होंने इन तीर्थों की भक्तिभाव से वन्दना की थी। अकबर के समकालीन श्वेताम्बर विद्वान हीरविजय सूरि ने भी मथुरा से लौटते हुए ग्वालियर की बावनगजी दिगम्बर मूर्ति के दर्शन किए थे। इससे मालूम होता है कि अभी थोड़े वर्ष पहले तक दिगम्बर और श्वेताम्बर एक दूसरे के मन्दिरों में आते-जाते थे, और वे साम्प्रदायिक व्यामोह से मुक्त थे।

अष्टापद (कैलाश) चम्पा, पावा, सम्मेदशिखर, ऊर्जयन्त (गिरनार) और शत्रुंजय आदि तीर्थ सर्वमान्य तीर्थ समझे जाते हैं, और इन क्षेत्रों को दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों समान रूप से पूजते आए हैं, इससे पता लगता है कि दोनों के तीर्थ-स्थान एक थे। लेकिन आगे चल कर दोनों सम्प्रदायों ने अपने अपने तीर्थों का निर्माण आरम्भ कर दिया, बहुत से नये तीर्थों की स्था-

पता हो गई, और नौबत यहाँ तक पहुँची कि एक दूसरे के तीर्थों पर जबर्दस्ती अधिकार किया जाने लगा और लाखों रुपया पानी की तरह बहाकर लन्दन की प्रिवी कौंसिल में फैसलों की आशा की जाने लगी !

दुर्भाग्य से जैनों के अनेक प्राचीन तीर्थ स्थानों का पता नहीं चलता। इसके सिवाय अष्टापद, श्रावस्ति, मिथिला, पुरिमताल, भद्रिलपुर, कौशाम्बी अहिच्छत्रा, पुरी, तक्षशिला, वीतिभयपत्तन, द्वारिका आदि अनेक तीर्थ विच्छिन्न हो गये हैं और जैन यात्री प्रायः आजकल इन तीर्थों की यात्रा नहीं करते। इसी तरह गजपथा, ऊन आदि तीर्थों का दिगम्बर भट्टारकों और धनिकों ने नवनिर्माण कर डाला है। इन सब बातों का गवेषणापूर्ण अध्ययन होना चाहिए, उसी समय जैन तीर्थों का ठीक-ठीक इतिहास लिखा जा सकता है।

यद्यपि जैन सूत्रों में पारस (ईरान), जोणग (यवन), चिलात (किरात), अलसण्ड (एलेक्जेण्ड्रिया) आदि कतिपय अनार्य देशों का उल्लेख आता है, लेकिन मालूम होता है कि आचार-विचार और भक्ष्याभक्ष्य के नियमों की कड़ाई के कारण बौद्ध श्रमणों की नाईं जैन श्रमण भारत के बाहर धर्मप्रचार के लिए नहीं जा सके। निशीथचूर्णि में आचार्य कालक के पारस देश में जाने का उल्लेख अवश्य आता है, लेकिन वे धर्म-प्रचार के लिए न जाकर वहाँ उज्जयिनी के राजा गर्दभिल्ल से बदला देने के लिए गए थे।

२८, शिवाजी पार्क, बम्बई २८ — जगदीशचन्द्र जैन

१

पार्श्वनाथ और उनके शिष्यों का विहार

पहले भगवान महावीर को जैन धर्म का संस्थापक माना जाता था, लेकिन अब विद्वानों की खोज से यह प्रमाणित हो गया है कि महावीर के पूर्व भी जैन धर्म विद्यमान था।

यद्यपि बौद्ध त्रिपिटकों में भगवान पार्श्वनाथ का उल्लेख नहीं आता लेकिन उनके चातुर्याम संवर का उल्लेख पाया जाता है। जैन शास्त्रों के अनुसार पार्श्वनाथ का जन्म वाराणसी* (बनारस) में हुआ था। उनकी माता का नाम वामा और पिता का नाम अश्वसेन था। पार्श्वनाथ ३० वर्ष तक गृहस्थ अवस्था में रहे, ७० वर्ष तक उन्होंने साधु जीवन व्यतीत किया, और १०० वर्ष की अवस्था में सम्मेदशिखर (पारसनाथ हिल, हजारीबाग) पर तप करने के पश्चात् निर्वाण पद पाया।

पार्श्वनाथ पुरुषश्रेष्ठ (पुरिसादानीय) कहे जाते थे। उनके आठ प्रधान शिष्य (गणधर) थे और उन्होंने साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाओं के चतुर्विध संघ की स्थापना की थी। पार्श्वनाथ ने अपने साधु जीवन में साकेत श्रावस्ति, कौशाम्बी, राजगृह, आमलकप्पा, काम्पिल्यपुर, अहिच्छत्र, हस्तिनापुर आदि स्थानों में विहार किया था।

पार्श्वनाथ के श्रमण पार्श्वापत्य (पासावच्चिज्ज) नाम से पुकारे जाते थे। आचारांग सूत्र में महावीर के माता-पिता को पार्श्वनाथ की परम्परा का

---

* इस पुस्तक में उल्लिखित तीर्थ स्थानों के विशेष विवरण और उनकी पहचान के हवाला के लिये देखिये लेखक की 'लाइफ इन एंशियेंट इन्डिया ऐज डिपिक्टेड इन द जैन कैनन्स' नामक पुस्तक का पाँचवाँ भाग।

अनुयायी कहा गया है। आवश्यकचूर्णि में पार्श्वनाथ के अनेक श्रमणों का उल्लेख मिलता है जो महावीर की साधु जीवन की चारिका के समय मौजूद थे। उदाहरण के लिये, उत्पल श्रमण ने पार्श्वनाथ की श्रमण परम्परा में दीक्षा ली थी, लेकिन बाद में उन्होंने दीक्षा छोड़ दी और अट्ठियगाम में ज्योतिषी बनकर रहने लगे। सोमा और जयन्ती उत्पल की दो बहिनें थीं। इन्होंने भी पार्श्वनाथ की दीक्षा छोड़कर परिव्राजिकाओं की दीक्षा ले ली थी।

पार्श्वनाथ के दूसरे श्रमण स्थविर मुनिचन्द्र थे। ये बहुश्रुत स्थविर अपने शिष्य परिवार के साथ कुमाराय सन्निवेश में किसी कुम्हार की शाला में रहते थे। एक बार मक्खलिपुत्र गोशाल जब महावीर के साथ विहार कर रहे थे तो वे स्थविर मुनिचन्द्र के पास आये और उन्हें आरम्भ तथा परिग्रह सहित देखकर उन्होंने प्रश्न किया कि आप लोग सारम्भ और सपरिग्रह होकर भी श्रमण निर्ग्रंथ कैसे कहे जा सकते हैं? बात यहां तक बढ़ गई कि गोशाल ने उनके निवास-स्थान (प्रतिश्रय) को जला देने की धमकी दी। लेकिन महावीर ने गोशाल को समझाया कि वे लोग पार्श्वनाथ के अनुयायी स्थविर साधु हैं, अतएव उनका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। इन स्थविरों के आचार-विचार के सम्बन्ध में कहा गया है कि ये अन्त में जिनकल्प धारण करते थे, तथा तप, सत्त्व, सूत्र, एकत्व और बल नामक पांच भावनाओं से संयुक्त होकर उपाश्रय में, उपाश्रय के बाहर, चौराहों पर, शून्यगृहों में और श्मशानों में रहकर तप करते थे।

भगवती सूत्र में वाणियगाम निवासी श्रमण गांगेय का उल्लेख आता है, जिन्होंने पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म त्याग कर महावीर के पाँच महाव्रत स्वीकार किये। उक्त सूत्र में तुंगिय नगरी को पार्श्वनाथ के स्थविरों का केन्द्र-स्थान बताते हुए वहाँ ५०० स्थविरों के विहार करने का उल्लेख है। इन स्थविरों में कालियपुत्र, मेहिल, आनन्दरक्खिय और कासव के नाम मुख्य हैं।

सूत्रकृतांग में पार्श्वनाथ के अनुयायी मेदार्य गोत्रीय उदक पेढालपुत्त का नाम आता है। महावीर के प्रधान शिष्य गौतम इन्द्रभूति के साथ इनका वाद हुआ और अन्त में इन्होंने महावीर के पास जाकर उनके पाँच महाव्रतों को स्वीकार किया। उत्तराध्ययन सूत्र में चतुर्दश पूर्वधारी कुमारश्रमण केशी का उल्लेख आता है। केशीकुमार अपने ५०० शिष्य-परिवार के साथ श्रावस्ति नगरी में विहार करते थे। यहां पर गौतम इन्द्रभूति के साथ इनका वार्तालाप

हुआ और इन्होंने पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म छोड़कर महावीर के पाँच महाव्रतों को स्वीकार कर लिया। इस प्रसंग पर गौतम इन्द्रभूति ने केशी-कुमार को समझाया—"पार्श्व और महावीर दोनों महातपस्वियों का उद्देश्य एक है, और दोनों ही ज्ञान, दर्शन और चारित्र से मोक्ष की सिद्धि मानते हैं। अन्तर इतना ही है कि पार्श्वनाथ ने अहिंसा, सत्य, अचौर्य और अपरिग्रह—इन चार व्रतों को माना है, जब कि महावीर इन व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत मिलाकर पाँच व्रत स्वीकार करते हैं। इसके अतिरिक्त, पार्श्वनाथ का धर्म सचेल (सवस्त्र-सन्तरुत्तर) है, और महावीर अचेल (नग्न) धर्म को मानते हैं, लेकिन हे महामुने, बाहरी वेष तो साधन मात्र है, वास्तव में चित्त की शुद्धि से मोक्ष की प्राप्ति होती है।"

पार्श्वनाथ की श्रमण परम्परा में स्त्रियाँ भी दीक्षित हो सकती थीं। ज्ञाता धर्मकथा और निरयावलि सूत्रों में ऐसी अनेक स्त्रियों के नामोल्लेख आते हैं। पार्श्वनाथ के भिक्षुणी संघ में पुष्पचूला नामक गणिनी मुख्य थी। उनकी एक शिष्या का नाम काली था। मथुरा के जैन शिलालेखों में भी आर्याओं का उल्लेख पाया जाता है।

पार्श्वनाथ और उनके शिष्यों ने बिहार और उत्तरप्रदेश के जिन स्थानों में विहार किया था, उन सब स्थानों की गणना भारत के प्राचीनतम जैन तीर्थों में की जानी चाहिए।

२

महावीर की विहार-चर्या

पार्श्वनाथ के लगभग अढ़ाई सौ वर्ष बाद विदेह की राजधानी वैशाली (बसाढ़, मुजफ्फरपुर) के उपनगर क्षत्रियकुण्डग्राम (कुण्डग्राम अथवा कुण्डपुर आधुनिक वसुकुण्ड) में महावीर का जन्म हुआ था। महावीर की माता का नाम त्रिशला और पिता का नाम सिद्धार्थ था। तीस वर्ष की अवस्था में महावीर ने दीक्षा ग्रहण की, बारह वर्ष तप किया और तीस वर्ष तक देश-देशान्तर में विहार किया। तत्पश्चात् बहत्तर वर्ष की अवस्था में ई० पू० ५२८ के लगभग मज्झिमपावा (पावापुरी, बिहार) में निर्वाण लाभ किया।

प्रथम वर्ष

महावीर वर्धमान ने मँगसिर वदी १० के दिन क्षत्रियकुण्डग्राम के बाहर ज्ञातृखण्ड नामक उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे श्रमण-दीक्षा ग्रहण की और एक मुहूर्त दिन अवशेष रहने पर कुम्मारगाम पहुँच कर वे ध्यान में अवस्थित हो गए। दूसरे दिन महावीर कोल्लाक सन्निवेश पहुँचे और वहाँ से मोराग सन्निवेश पहुँच कर दूइज्जन्त नाम के तापस आश्रम में ठहरे। एक रात ठहर कर उन्होंने वहाँ से विहार किया और आठ महीने तक घूम-फिर कर वे फिर इसी स्थान में आए। यहाँ पन्द्रह दिन रह कर महावीर अट्ठियगाम चले गए जहाँ उन्हें शूलपाणि यक्ष ने उपसर्ग किया। यहाँ महावीर चार महीने रहे। यह उनका प्रथम चातुर्मास था।

दूसरा वर्ष

शरद ऋतु आने पर महावीर यहाँ से मोराग सन्निवेश गए। वहाँ से उन्होंने वाचाला की तरफ विहार किया। वाचाला दक्षिण और उत्तर भागों में विभक्त

भ० महावीर द्वारा अवलोकित स्थान [५,०० ई॰पू॰]



थी। दोनों के बीच में सुवर्णकूला और रूप्यकूला नामक नदियाँ बहती थीं। महावीर ने दक्षिण वाचाला से उत्तर वाचाला की ओर प्रस्थान किया। उत्तर वाचाला जाते हुए बीच में कनकखल नाम का आश्रम पड़ता था। यहाँ से महावीर सेयविया नगरी पहुँचे, जहाँ प्रदेशी राजा ने उनका आदर-सत्कार किया। तत्पश्चात् गंगा नदी पार कर महावीर सुरभिपुर पहुँचे और वहाँ से थूणाक सन्निवेश पहुँच कर ध्यान में अवस्थित हो गए। यहाँ से महावीर राजगृह गए और उसके बाद नालन्दा के बाहर किसी जुलाहे की शाला में ध्यानावस्थित हो गए। संयोगवश मंखलिपुत्र गोशाल भी उस समय वहीं ठहरा हुआ था। महावीर के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर वह उनका शिष्य बन गया। यहाँ से चल कर दोनों कोल्लाग सन्निवेश पहुँचे। महावीर ने यहाँ दूसरा चातुर्मास बिताया।

तीसरा वर्ष

तत्पश्चात् महावीर और गोशाल सुवर्णखलय पहुँचे। वहाँ से ब्राह्मणग्राम गये। यहाँ नन्द और उपनन्द नामक दो भाई रहते थे और दोनों के अलग अलग मोहल्ले थे। गुरु-शिष्य यहाँ से चलकर चंपा पहुँचे। भगवान ने यहाँ तीसरा चातुर्मास व्यतीत किया।

चौथा वर्ष

तत्पश्चात् दोनों कालाय सन्निवेश जाकर एक शून्यगृह में ठहरे। वहाँ से पत्तकालय गये, और वहाँ से कुमाराय सन्निवेश जाकर चंपरमणिज्ज नामक उद्यान में ध्यानावस्थित हो गये। यहाँ पार्श्वापत्य स्थविर मुनिचन्द्र ठहरे हुए थे जिनके विषय में ऊपर कहा जा चुका है। यहाँ से चलकर दोनों चोराग सन्निवेश पहुँचे, लेकिन यहाँ गुप्तचर समझकर दोनों पकड़ लिये गये। यहाँ से दोनों ने पृष्ठचंपा के लिए प्रस्थान किया। महावीर ने यहाँ चौथा चौमासा बिताया।

पाँचवाँ वर्ष

पारणा के बाद महावीर और गोशाल यहाँ से कयंगला के लिए रवाना हुए। वहाँ से श्रावस्ति पहुँचे, फिर हलेदुय गये। फिर दोनों नङ्गलाग्राम पहुँचे

कर वासुदेव के मन्दिर में ध्यान में लीन हो गये। तत्पश्चात् दोनों आवर्त्त-ग्राम जाकर बलदेव मन्दिर में ठहरे। यहाँ से दोनों चोराय सन्निवेश पहुँचे, फिर कलबुक सन्निवेश आये। यहाँ दोनों कैद कर लिए गये। तत्पश्चात् गुरु-शिष्य लाट देश की ओर चले। लाट देश वज्जभूमि और सुब्भभूमि नामक दो भागों में विभक्त था। इस देश में गाँवों की संख्या बहुत कम थी, और बहुत दूर चलने पर भी वसति (निवास स्थान) मिलना कठिन होता था। यहाँ के निवासी रूक्ष भोजन करने के कारण प्रकृति से क्रोधी होते थे। ये लोग साधुओं से द्वेष करते थे, उन्हें कुत्तों से कटवाते थे, और उन पर दण्ड आदि से प्रहार करते थे। ये लोग यतियों को ऊपर से उठाकर नीचे पटक देते, तथा उनके गोदोहन, उकडू और वीर आदि आसनों से गिराकर उन्हें मारते थे। कपास आदि के अभाव में यहाँ के लोग तृण ओढ़ते थे। लाट देश में महावीर और गोशाल ने अनेक प्रकार के कष्ट सहनकर छह मास विहार किया। इस देश में बौद्ध साधु कुत्तों के उपद्रव से बचने के लिए अपनी देह के बराबर चार अंगुल मोटी लाठी लेकर चलते थे, लेकिन महावीर ने यहाँ बिना किसी लाठी आदि के भ्रमण किया। तत्पश्चात् दोनों पुन्नकलस होते हुए भद्दिय नगरी लौट आये। महावीर ने यहाँ पाँचवाँ चातुर्मास बिताया।

छठा वर्ष

तत्पश्चात् दोनों कदलीग्राम, जम्बूसंड और तंबाय सन्निवेश होते हुए कूपिय सन्निवेश पहुँचे। यहाँ इन्हें गुप्तचर समझ कर पकड़ लिया गया। उसके बाद दोनों वैशाली आये। यहाँ आकर गोशाल ने महावीर से कहा कि जब मुझ पर कोई आपत्ति आती है तो आप मेरी सहायता नहीं करते। यह कह कर गोशाल महावीर का साथ छोड़कर चला गया। महावीर वैशाली से ग्रामाय सन्निवेश होते हुए सालिसीसय ग्राम पहुँचे। यहाँ उन्हें कटपूतना व्यन्तरी ने अनेक कष्ट दिए। कुछ समय बाद गोशाल फिर महावीर के पास आ गया। दोनों भद्दिय पहुँचे। महावीर ने यहाँ छठा वर्षावास व्यतीत किया।

सातवाँ वर्ष

तत्पश्चात् गुरु-शिष्य ने मगध देश में विहार किया। यहाँ आलभिया नगरी में महावीर ने सातवाँ वर्षावास व्यतीत किया।

आठवाँ वर्ष

इसके बाद दोनों कुंडाग सन्निवेश जाकर वासुदेव के मन्दिर में ध्यान में अवस्थित हो गये। वहाँ से मद्दणा ग्राम पहुँचकर बलदेव के मन्दिर में ठहरे। यहाँ से बहुसालग ग्राम पहुँचे यहाँ सालज्जा व्यन्तरी ने उपसर्ग किया। तत्पश्चात् दोनों ने लोहग्गल राजधानी की ओर प्रस्थान किया। यहाँ उन्हें राजपुरुषों ने गुप्तचर समझकर पकड़ लिया। यहाँ से दोनों पुरिमताल पहुँचे और शकटमुख उद्यान में ध्यानावस्थित हो गये। यहाँ से दोनों ने उन्नाग की ओर प्रस्थान किया, और वहाँ से गोभूमि पहुँचे। तत्पश्चात् दोनों राजगृह आये। यहाँ महावीर ने आठवाँ चातुर्मास व्यतीत किया।

नौवाँ वर्ष

गोशाल को साथ लेकर महावीर ने फिर से लाढ देश की यात्रा की, और यहाँ वज्रभूमि और शुभ्रभूमि में विचरण किया। अब की बार महावीर यहाँ छह महीने तक रहे और उन्होंने अनेक प्रकार के कष्ट सहन करते हुए यहीं चातुर्मास व्यतीत किया।

दसवाँ वर्ष

तत्पश्चात् महावीर और गोशाल सिद्धत्थपुर आये। यहाँ से दोनों जब कुम्मगाम जा रहे थे तो जंगल में एक तिल के पौधे को देखकर गोशाल ने प्रश्न किया कि यह पौधा नष्ट हो जायगा या नहीं? महावीर ने उत्तर दिया कि पौधा नष्ट हो जायगा, लेकिन उसका बीज फिर पौधे के रूप में परिणत होगा। कुम्मगाम में वैश्यायन नामक बाल तपस्वी को तप करते देखकर गोशाल ने पूछा—"तुम मुनि हो या जूओं की शय्या?"

इस पर वैश्यायन ने क्रुद्ध होकर गोशाल पर तेजोलेश्या छोड़ी। महावीर ने शीतलेश्या का प्रयोग कर गोशाल को बचाया। इसके बाद कुम्मगाम से सिद्धत्थपुर लौटते हुए महावीर के कथनानुसार जब गोशाल ने उगे हुए तिल के पौधे को देखा तो वह नियतिवादी हो गया और महावीर से अलग होकर श्रावस्ति में किसी कुम्हार की शाला में आकर महावीर द्वारा प्रतिपादित तेजोलेश्या की सिद्धि के लिये प्रयत्न करने लगा। महावीर ने वैशाली के लिये प्रस्थान किया और नाव से गण्डकी नदी पार कर वाणियगाम पहुँचे। वहाँ से श्रावस्ति पहुँच कर महावीर ने दसवाँ चौमासा व्यतीत किया।

ग्यारहवाँ वर्ष

तत्पश्चात् महावीर ने सानुलट्ठियगाम की ओर प्रस्थान किया। वहाँ से वे दढभूमि गये और पेढाल उद्यान में पोलास नामक चैत्य में ठहरे। यहाँ बहुत से म्लेच्छ रहते थे उन्होंने महावीर को अनेक कष्ट दिये। इसके बाद वे वालुयागाम, सुभोम, सुच्छेत्ता और मलय होते हुए हत्थिसीस पहुँचे। इन स्थानों में महावीर ने अनेक उपसर्ग सहे। तत्पश्चात् महावीर ने तोसलि के लिये प्रस्थान किया। वहाँ से वे मोसलि गये, फिर लौट कर तोसलि आये। वहाँ से सिद्धत्थपुर होते हुए वयगाम आये। महावीर ने इस प्रदेश में छह महीने विचरण किया। इन स्थानों में महावीर को घोर उपसर्ग सहन करने पड़े। इसके बाद महावीर आलभिया पहुँचे और फिर सेयविया होते हुए उन्होंने श्रावस्ति की ओर विहार किया। उस समय श्रावस्ति में स्कन्द (कार्तिकेय) की पूजा होती थी। वहाँ से महावीर कौशाम्बी, वाराणसी, राजगृह और मिथिला में विचरण करते हुए वैशाली पहुँचे और यहाँ उन्होंने ग्यारहवाँ चौमासा बिताया। (कुछ लोगों का कहना है कि यह चातुर्मास महावीर ने मिथिला में बिताया।)

बारहवाँ वर्ष

यहाँ से महावीर ने सुसुमारपुर के लिए प्रयाण किया। फिर भोगपुर नन्दिगाम और मेंढियगाम होते हुए कौशाम्बी पधारे। यहाँ उन्हें भ्रमण करते करते चार मास बीत गये लेकिन आहार-लाभ न हुआ। अन्त में चम्पा के राजा दधिवाहन की पुत्री चन्दनबाला ने उन्हें आहार देकर पुण्य लाभ किया। तत्पश्चात् महावीर सुमङ्गलगाम और पालय होते हुए चम्पा पधारे और यहाँ किसी ब्राह्मण की यज्ञशाला में ठहरे। महावीर ने यहाँ बारहवाँ वर्षावास बिताया।

तेरहवाँ वर्ष

तत्पश्चात् महावीर जंभियगाम पहुँचे। वहाँ से मेंढियगाम होते हुए मज्झिमपावा आये। यहाँ से लौट कर फिर जंभियगाम गये और यहाँ नगर के बाहर वियावत्त चैत्य में ऋजुवालिका नदी के उत्तरी किनारे श्यामाक गृहपति के खेत में शाल वृक्ष के नीचे वैशाख सुदी १० के दिन केवलज्ञान प्राप्त किया।

महावीर की विहार-चर्या

इसके बाद महावीर ने ३० वर्ष तक देश-देशान्तर में विहार करते हुए अपने उपदेशामृत से जन-समुदाय का कल्याण करते हुए अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। अन्त में वे मज्झिमपावा पधारे और वहाँ चातुर्मास व्यतीत करने के लिये हस्तिपाल नामक गणराजा के पटवारी के दफ्तर (रज्जुगसभा) में ठहरे। एक एक करके वर्षाकाल के तीन महीने बीत गये। चौथा महीना लगभग आधा बीतने को आया। इस समय कार्तिकी अमावस्या के प्रातःकाल महावीर ने निर्वाण लाभ किया। महावीर के निर्वाण के समय काशी कोशल के नौ मल्ल और नौ लिच्छवि नामक अठारह गणराजा मौजूद थे। उन्होंने इस पवित्र अवसर पर सर्वत्र दीपक जलाकर महान उत्सव मनाया।

महावीर वर्धमान ने बिहार, बंगाल और पूर्वीय उत्तरप्रदेश के जिन स्थानों को अपने विहार से पवित्र किया था वे सब स्थान जैनों के पुनीत तीर्थ हैं। दुर्भाग्य से आज उन स्थानों में से बहुत कम स्थानों का ठीक ठीक पता लगता है, बहुत से तो पिछले अढाई हजार वर्षों में नाम शेष रह गये हैं। यदि बिहार बङ्गाल और उत्तरप्रदेश के उन प्रदेशों की पैदल यात्रा की जाय तो निस्सन्देह यात्रियों को अक्षय पुण्य का लाभ हो और इससे सम्भवतः बहुत से अज्ञात पवित्र स्थानों का पता चल जाय।

३

जैन श्रमण-संघ और जैन धर्म का प्रसार

बृहत्कल्प सूत्र और निशीथ सूत्र जैसे प्राचीन जैन सूत्रों से पता लगता है कि भगवान् महावीर जब साकेत नगरी के सुभूमिभाग नामक उद्यान में विहार कर रहे थे तो उन्होंने निम्नलिखित सूत्र कहा था—

> "निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनी साकेत के पूर्व में अङ्ग-मगध तक, दक्षिण में कौशाम्बी तक, पश्चिम में स्थूणा तक, तथा उत्तर में कुणाला (उत्तर कोसल) तक विहार कर सकते हैं। इतने ही क्षेत्र आर्य क्षेत्र हैं, बाकी नहीं, क्योंकि इन्हीं क्षेत्रों में निर्ग्रन्थ भिक्षु और भिक्षुणियों के ज्ञान-दर्शन और चारित्र अक्षुण्ण रह सकते हैं।"

इससे पता लगता है कि आरम्भ में जैन श्रमणों का विहार-क्षेत्र आधुनिक बिहार, पूर्वीय उत्तरप्रदेश तथा पश्चिमीय उत्तरप्रदेश के कुछ भाग तक सीमित था, इसके बाहर वे नहीं गये थे।

बृहत्कल्प भाष्य में जनपद-परीक्षा प्रकरण में बताया गया है कि जनपद-विहार करने से साधुओं की दर्शन-विशुद्धि होती है, महान् आचार्य आदि की संगति से वे अपने आपको धर्म में स्थिर रख सकते हैं, तथा विद्या-मन्त्र आदि की प्राप्ति कर सकते हैं। यहाँ बताया गया है कि साधु को नाना देशों की भाषाओं में कुशल होना चाहिए जिससे वह देश-देश के लोगों को उनकी भाषा में उपदेश दे सके। इतना ही नहीं, साधु को इस बात की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए कि किस देश में किस प्रकार से धान्य की उत्पत्ति होती है— कहीं वर्षा से धान्य होते हैं, कहीं नदी के पानी से होते हैं, कहीं तालाब के

पानी से होते है, कहीं कुँए के पानी से होते हैं, कहीं नदी की बाढ से होते हैं और कहीं नाव में रोपे जाते हैं। इसी प्रकार साधु को यह जानना आवश्यक है कि किस देश मे व्यापार-बनिज से आजीविका चलती है, कहीं खेती से आजीविका होती है, तथा कहीं के लोग मास-भक्षी होते हैं और कहीं निरामिष-भोजी।

कहना न होगा कि जैन श्रमणो ने भयङ्कर कष्टों का सामना कर अपने सिद्धान्तों का प्रसार किया था। उस समय मार्ग मे भयानक जङ्गल पडते थ, जो हिंस्र जतुओं से परिपूर्ण थे। रास्ते मे बडे बडे पर्वत और नदी-नालों को लांघ कर जाना पडता था। चोर-डाकुओं के उपद्रव और राज्योपद्रव भी कम नहीं थे। वसति (ठहरने की जगह) तथा दुर्भिक्ष-जन्य उपद्रवों की भी कमी नहीं थी। ऐसी दशा मे देश देशान्तर मे घूम-घूमकर अपने धर्म का प्रचार करना साधारण बात न था।

लेकिन कुछ समय पश्चात् जैन श्रमणों को राजा सप्रति (२२०-२११ ई पू.) का आश्रय मिला और जैन भिक्षु बिहार, बङ्गाल और उत्तरप्रदेश की सीमा का उल्लङ्घन कर दूर दूर तक विहार करने लगे। जैन सूत्रों के अनुसार राजा सम्प्रति नेत्रहीन कुणाल का पुत्र था, जो सम्राट् चन्द्रगुप्त (३२५-३०२ ई. पू.) का प्रपौत्र, बिन्दुसार का पौत्र तथा अशोक (२७८ २३७ ई० पू०) का पुत्र था। अवन्ति का राजा सम्प्रति आर्य सुहस्ति के उपदेश से जैन श्रमणो का उपासक और जैन धर्म का प्रभावक बना था। राजा सम्प्रति ने नगर के चारो दरवाजों पर दानशालाएँ खुलवाकर जैन श्रमणो को भोजन-वस्त्र देने की व्यवस्था की थी। उसने अपने आधीन आसपास के सामन्त राजाओं को निमन्त्रित कर उन्हे श्रमण सघ की भक्ति करने को कहा। सम्प्रति अपने कर्मचारियो के साथ रथयात्रा महोत्सव मे सम्मिलित होता और रथ के सामने विविध पुष्प, फल, वस्त्र, कौडियाँ आदि चढाकर अपने को धन्य मानता था। राजा सम्प्रति ने अपने भटों को शिक्षा देकर साधुवेष मे सीमान्त देशों म भेजा, जिससे जैन श्रमणो को निर्दोष भिक्षा का लाभ हो सके। इस प्रकार सम्प्रति ने आन्ध्र, द्रविड, महाराष्ट्र, कुडुक्क (कुर्ग) आदि देशों को जैन श्रमणों के सुख-पूर्वक विहार करने योग्य बनाया।

इस समय से निम्नलिखित साढे पच्चीस देश आर्य देश माने जाने लगे, और इन देशो में जैन श्रमणों का विहार होने लगा —

जनपद		राजधानी
१	मगध	राजगृह
२	अङ्ग	चम्पा
३	वङ्ग	ताम्रलिप्ति
४	कलिङ्ग	काचनपुर
५	काशी	वाराणसी
६	कोशल	साकेत
७	कुरु	गजपुर
८	कुशावर्त	शौरिपुर
९	पाञ्चाल	काम्पिल्यपुर
१०	जाङ्गल	अहिच्छत्रा
११	सौराष्ट्र	द्वारवती
१२	विदेह	मिथिला
१३	वत्स	कौशाम्बी
१४	शाण्डिल्य	नन्दिपुर
१५	मलय	भद्रिलपुर
१६	मत्स्य	वैराट
१७	वरणा	अच्छा
१८	दशार्ण	मृत्तिकावती
१९	चेदि	शुक्तिमती
२०	सिन्धु-सौवीर	वीतिभय
२१	शूरसेन	मथुरा
२२	भंगि	पापा
२३	वट्टा (?)	मासपुरी (?)
२४	कुणाल	श्रावस्ति
२५	लाढ	कोटिवर्ष
२५½	केकयी अर्ध	श्वेतिका

कल्पसूत्र में उल्लिखित स्थविरावलि में जो जैन श्रमणों के निम्नलिखित गण, शाखा और कुलों का उल्लेख मिलता है, उससे भी पता चलता है कि


भ० महावीर के समय का भारत
५०० ई-पू-
माप १: ३००००००
राजधानी
साधारण शहर
गान्धार
तक्षशिला
नदी वितस्ता
पुरुषपुर
मरु
मत्स्य
मध्यदेश
दशार्ण
अवन्ति
उज्जयिनी
कच्छ
प्रभास
गिरिनार
वलभी
भृगुकच्छ
दण्डक
प्रतिष्ठान
महाराष्ट्र
विदर्भ
शूर्पारक
कलिंग
आन्ध्र
नदी कृष्णा
वनवासि
कांचीपुर
सिंहल
कुरु
काशी
मगध
विदेह
मिथिला
वत्स
चेदि
अंग
वंग
मलय
पुण्ड्रवर्धन
नेपाल

ईसवी सन के पूर्व जैन श्रमणों की प्रवृत्तियों का केन्द्र काफी विस्तृत हो गया था :—

गोदास गण की शाखाएँ:—तामलित्तिया, कोडिवरिसिया, पुंडवद्धणिया, दासी खब्बडिया।

उत्तर बलिस्सह गण की शाखाएँ:—कोसंबिया, सोइत्तिया (सुत्तिवत्तिया), कोडंबाणी, चन्दनागरी।

उद्देह गण की शाखाएँ:—उदंबरिज्जिया, मासपुरिया, मइपत्तिया, पुण्ण-पत्तिया।

कुलः—नागभूय, सोमभूय, उल्लगच्छ, हत्थलिज्ज, नंदिज्ज, पारिहासय।

चारण गण की शाखाएँ:—हारियमालागारी (हारियमालगढी) संका-सीआ, गवेधुया, वज्जनागरी।

कुलः—वच्छलिज्ज, पीइधम्मिअ, हालिज्ज, पूसमित्तिज्ज, मालिज्ज, अज्जवेडय, कण्हसह।

उडुवाडिय गण की शाखाएँ:—चंपिज्जिया, भद्दिज्जिया, काकंदिया, मेह-लिज्जिया।

कुलः—भद्दजसिय, भद्दगुत्तिय, जसभद्द।

वेसवाडिय गण की शाखाएँ:—सावत्थिया, रज्जपालिया, अंतरिज्जिया, खेम-लिज्जिया।

कुल—गणिय, कामिड्ढिअ, इंदपुरग।

माणव गण की शाखाएँ:—कासवज्जिया, गोयमज्जिया, वासिट्ठिया, सोरट्ठिया।

कुल—इसिगुत्ति, इसिदत्तिय, अभिजयन्त।

कोडिय गण की शाखाएँ:—उच्चानागरी, विज्जाहरी, वइरी, मज्झिमिल्ला*।

कुलः—बंभलिज्ज, वच्छलिज्ज, वाणिज्ज, पण्हवाहणय*।

इसके अतिरिक्त मज्झिमा, विज्जाहरी, उच्चानगरी, अज्जसेणिया, अज्जतावसी, अज्जकुबेरी, अज्जइसिपालिया, बंभदीविया, अज्जवइरी, अज्जनाइली, अज्ज-जयन्ती नामक शाखाओं का उल्लेख मिलता है। ध्यान रखने की बात है कि

---

* ध्यान रखने की बात है कि विक्रम संवत् १४०५ में प्रबन्धकोश के रच-यिता राजशेखर ने ग्रंथ की प्रशस्ति में अपने आपको कोटिक गण, प्रश्नवाहनक कुल, मध्यमा शाखा, हर्षपुरीय गच्छ और मलधारि सन्तान बताया है।

मथुरा के शिलालेखों में भी ये ही गण, शाखाये और कुल उत्कीर्ण हैं।

दुर्भाग्य से इनमें अधिकतर नामों का ठीक ठीक पता नहीं चलता, किन्तु जिनका पता चलता है उससे स्पष्ट है कि जैन श्रमणों ने ईसवी सन के पूर्व ताम्रलिप्ति, कोटिवर्ष, पाण्डुवर्धन, कौशाम्बी, शुक्तिमती, उदुम्बर, मासपुरी (?) चम्पा, काकन्दी, मिथिला, श्रावस्ति, अन्तरंजिया, कोमिल्ला, उच्चानागरी, मध्यमिका और ब्रह्मद्वीप आदि स्थानों में विहार कर इन प्रदेशों को अपनी प्रवृत्तियों का केन्द्र बनाया था। इन सब क्षेत्रों को जैनधर्म के पवित्र तीर्थ मानना चाहिए।

४

बिहार - नेपाल - उड़ीसा - बंगाल - बरमा

१—बिहार

ईसा के पूर्व चौथी शताब्दि से लेकर ईसवी सन की पाँचवीं शताब्दि तक बिहार एक समृद्धिशाली प्रदेश था और उस समय यहाँ का कला-कौशल उन्नति के शिखर पर पहुँचा हुआ था। यहाँ के शासकों ने जगह-जगह सड़के बनवाई थीं, तथा जावा, बालि आदि सुदूरवर्ती द्वीपों में जहाजों के बेड़े भेजकर इन द्वीपों को बसाया था।

बिहार प्रान्त में जो प्राचीन खण्डहर और मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं उससे पता चलता है कि यह स्थान ईसा के पूर्व छठी शताब्दि में बौद्ध तथा जैनों का बड़ा भारी केन्द्र था। सम्राट् अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये यहाँ से लङ्का, चीन, तिब्बत आदि सुदूर स्थानों में उपदेशक भेजे थे।

जैन और बौद्ध ग्रन्थों में **मगध** देश (दक्षिण बिहार) की गणना प्राचीन १६ जनपदों* में की गई है। यह देश पूर्व दिशा का पुनीत तीर्थ माना जाता था और यहाँ का जल पवित्र समझा जाता था। मगध की भाषा मागधी थी जिसमें महावीर और बुद्ध ने प्रवचन किया था।

---

* अङ्ग, बङ्ग, मगह, मलय, मालवय, अच्छ, वच्छ, कोच्छ, पाढ, लाढ, वज्जि, मोलि, कासी, कोसल, अवाह, सम्भुत्तर (सुम्होत्तर)—भगवती १५। तुलना करो—अंग, मगध, कासी, कोसल, वज्जि, मल्ल, चेति, वंस, कुरु, पञ्चाल, मच्छ, सूरसेन, अस्सक, अवन्ति, गंधार, कम्बोज—अंगुत्तर निकाय १, पृ. २१३.

मगध का दूसरा नाम कीकट था। ब्राह्मण ग्रन्थों में मगध को पापभूमि बताते हुए वहाँ गमन करना निषिद्ध माना गया है। इस पर १८वीं सदी के एक जैन यात्री ने व्यंग्यपूर्वक लिखा है—यह कितने आश्चर्य की बात है कि यदि काशी में एक कौवा भी मर जाय तो वह सीधे मोक्ष में पहुँच जाता है, लेकिन यदि कोई मनुष्य मगधभूमि में मरे तो वह गधे की योनि में पैदा होता है! जैन ग्रन्थों में मगधवासियों की बहुत प्रशंसा की है और कहा है कि वहाँ के लोग संकेत मात्र से बात को समझ जाते हैं।

शिशुनागवंशी सम्राट् बिंबिसार (श्रेणिक) मगध में राज्य करता था। कूणिक (अजातशत्रु, मृत्युकाल ५२५ ई. पू.), अभयकुमार और मेघकुमार आदि उसके अनेक पुत्र थे।

मगध की राजधानी राजगृह (राजगिर) थी। राजगृह की गणना भारत की दस राजधानियों में की गई है।* मगध देश का मुख्य नगर होने से राजगृह को मगधपुर भी कहा जाता था। जैन ग्रन्थों में इसे क्षितिप्रतिष्ठित, चणकपुर, ऋषभपुर और कुशाग्रपुर नाम से भी कहा गया है। कहा जाता है कि कुशाग्रपुर में प्रायः आग लग जाया करती थी, अतएव मगध के राजा बिम्बिसार ने उसके स्थान पर राजगृह नगर बसाया।

महाभारत के अनुसार, राजगृह में राजा जरासंध राज्य करता था। यहाँ से महावीर के अनेक शिष्यों का मोक्ष-गमन बताया जाता है। राजगृह प्रभास गणधर और दशवैकालिक के कर्त्ता शय्यंभव का जन्मस्थान था। महावीर को केवलज्ञान होने के सोलह वर्ष पश्चात् यहाँ दूसरे निह्नव की स्थापना हुई थी।

पाँच पहाड़ियों से घिरे रहने के कारण राजगृह को गिरिव्रज भी कहा जाता था। इन पाँच पहाड़ियों के नाम हैं—विपुल, रत्न, उदय, स्वर्ण और वैभार। ये पहाड़ियाँ आजकल भी राजगृह में मौजूद हैं और जैनों द्वारा पवित्र मानी जाती हैं। इनमें वैभार और विपुल गिरि का जैन ग्रन्थों में विशेष महत्व बताया

* चम्पा, मथुरा, वाराणसी, श्रावस्ति, साकेत, कांपिल्य, कौशांबी, मिथिला, हस्तिनापुर, राजगृह—स्थानांग १०.७१७ निशीथ सूत्र ६.१६। तुलना करो—चम्पा, राजगृह, श्रावस्ति, साकेत, कौशांबी, वाराणसी—दीघनिकाय, महासुदस्सन सुत्त।

गया है। वैभार का वर्णन करते हुए कहा है कि यह पहाड़ी बहुत चित्ताकर्षक थी, अनेक वृक्ष और लताओं से मंडित थी, नाना प्रकार के फल-फूल यहाँ खिलते थे, और नगरवासी यहाँ क्रीडा के लिए जाते थे। विपुलाचल से अनेक जैन मुनियों के मोक्ष-गमन का उल्लेख मिलता है। बौद्ध ग्रन्थों से पता लगता है कि विपुलाचल सब पहाड़ियों में ऊँचा था, और यह प्राचीनवंश, वंकक तथा सुपश्य नाम से प्रख्यात था।

वैभार पर्वत के नीचे तपोदा अथवा महातपोपतीरप्रभ नामक गरम पानी का बड़ा कुण्ड था। जैन सूत्रों में इस कुण्ड की लम्बाई पाँच सौ धनुष बताई गई है। राजगिर में आजकल भी गरम पानी के सोते मौजूद हैं, जिन्हें तपोवन के नाम से पुकारा जाता है। सातवीं सदी के चीनी यात्री हुअन-सांग ने अपने विवरण में इनका उल्लेख किया है।

बुद्ध और महावीर ने राजगृह में अनेक चातुर्मास व्यतीत किये थे। जैन ग्रन्थों के अनुसार यहाँ गुणशिल, मंडिकुच्छ, मोग्गरपाणि आदि चैत्य—मन्दिर थे। महावीर प्रायः गुणशिल चैत्य में ठहरा करते थे। वर्तमान गुणावा, जो नवादा स्टेशन से लगभग तीन मील दूर है, प्राचीन गुणशिल माना जाता है।

राजगृह व्यापार का बड़ा केन्द्र था। यहाँ दूर-दूर के व्यापारी माल खरीदने आते थे। यहाँ से तक्षशिला, प्रतिष्ठान, कपिलवस्तु, कुशीनारा आदि भारत के प्रसिद्ध नगरों को जाने के मार्ग बने हुए थे। बौद्ध सूत्रों में मगध में धान के सुन्दर खेतों का उल्लेख आता है।

बुद्ध-निर्वाण के पश्चात् राजगृह की अवनति होती चली गई। जब चीनी यात्री हुअन-सांग यहाँ आया तो यह नगरी अपनी शोभा खो चुकी थी। चौदहवीं सदी के विद्वान जिनप्रभ सूरि के समय राजगृह में ३६,००० घरों के होने का उल्लेख है, जिनमें आधे घर बौद्धों के थे।

वर्तमान राजगिर, जो बिहार शरीफ से दक्षिण की ओर १३-१४ मील के फासले पर है, प्राचीन राजगृह माना जाता है।

पाटलिपुत्र (पटना) मगध देश की दूसरी राजधानी थी। पाटलिपुत्र कुसुमपुर, पुष्पपुर और पुष्पभद्र के नाम से भी पुकारा जाता था।

कहते हैं कि राजा अजातशत्रु (कूणिक) के मर जाने पर राजकुमार उदायि (मृत्यु ४६७ ई० पू०) को चम्पा में रहना अच्छा न लगा। उसने अपने

मन्त्रियों को किसी योग्य स्थान की तलाश करने भेजा, और यहाँ एक सुन्दर पाटलि का वृक्ष देखकर पाटलिपुत्र नगर बसाया। बौद्धो के महावग्ग के अनुसार, अजातशत्रु के मन्त्री सुनीध और वर्षकार ने वैशालिनिवासी वज्जियो के आक्रमण से बचने के लिए इस नगर को बसाया था।

पाटलिपुत्र की गणना सिद्धक्षेत्रो मे की गई है। पाटलिपुत्र जैन साधुओ का केन्द्र था। यहाँ जैन आगमो के उद्धार के लिए जैन श्रमणो का प्रथम सम्मेलन हुआ था, जो पाटलिपुत्र-वाचना के नाम से प्रसिद्ध है। राजा उदायि ने यहाँ जैन मन्दिर बनवाया था। पाटलिपुत्र मे शकटार मन्त्री के पुत्र मुनि स्थूलभद्र कोशा गणिका के घर रहे थे और उन्होने धर्मोपदेश देकर उसे श्राविका बनाया था। इस नगर मे भद्रबाहु, आर्य महागिरि, आर्य सुहस्ति, वज्रस्वामी और उमास्वाति वाचक ने विहार किया था। यूनानी यात्री मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र के सम्राट् अशोक के राजभवन का वर्णन किया है। फाहियान के समय ईसा की पाँचवीं शताब्दि तक यह भवन विद्यमान था।

पाटलिपुत्र गगा के किनारे बसा था। यह नगर व्यापार का बडा केन्द्र था। पाटलिपुत्र और सुवर्णभूमि (बरमा) मे व्यापार होता था। जब हुअन-साग यहाँ आया तो यह नगर एक साधारण गाँव के रूप मे विद्यमान था।

नालन्दा राजगृह के उत्तर-पूर्व मे अवस्थित था। बौद्ध सूत्रो मे राजगृह और नालन्दा के बीच मे एक योजन का अन्तर बताया गया है। बीच मे अम्बलट्ठिका नामक वन पडता था। प्राचीन काल मे नालन्दा बडा समृद्धिशाली नगर था, जो अनेक भवन और बाग-बगीचो से मडित था। भिक्षुओ को यहाँ यथेच्छ भिक्षा मिलती थी। बुद्ध, महावीर और गोशाल ने नालन्दा मे विहार किया था।

नालन्दा के उत्तर-पश्चिम मे सेसदविया नाम की एक प्याऊ (उदकशाला) थी, जिसके उत्तर-पश्चिम मे हस्तिद्वीप नाम का उपवन था। यहाँ महावीर के प्रधान गणधर गौतम ने सूत्रकृताग नामक जैन सूत्र के अन्तर्गत नालन्दीय नामक अध्ययन की रचना की थी।

१३वीं सदी तक नालन्दा बौद्ध विद्या का महान् केन्द्र था। चीन, जापान, तिब्बत, लङ्का आदि से विद्यार्थी यहाँ विद्याध्ययन के लिये आते थे। चीनी यात्री हुअन-साग ने यहाँ रह कर विद्या पढ़ी थी। बौद्धो के यहाँ अनेक विहार थे। नालन्दा मे अनेक चित्रकार और शिल्पी रहते थे। नैपाल और बरमा के

साथ इस नगर का घनिष्ठ सम्बन्ध था।

राजगिर से ७ मील दूरी पर अवस्थित बड़ागाँव को प्राचीन नालन्दा माना जाता है।

उद्दण्डपुर अथवा दण्डपुर का उल्लेख जैनसूत्रों में आता है। मंखलिपुत्र गोशाल ने यहाँ विहार किया था। महाभारत में भी इस नगर का उल्लेख किया गया है। कहते हैं यहाँ बहुत से दण्डी साधु रहते थे, इसलिये इस स्थान का नाम दण्डपुर पड़ा। दण्डपुर की पहचान बिहार शरीफ से की जाती है।

तुङ्गिया नगरी में अनेक श्रमणोपासकों के रहने का उल्लेख आता है। कल्पसूत्र में तुङ्गिक नामक जैन श्रमणों के गण का उल्लेख मिलता है, इससे मालूम होता है कि यह नगर जैन श्रमणों का केन्द्र रहा होगा। १८वीं सदी के जैन यात्री बिहार शरीफ को प्राचीन तुङ्गिया मानते हैं। बिहार से ४ मील पर तुङ्गीगाम ही सम्भवतः प्राचीन तुङ्गिया हो सकता है।

पावा अथवा मध्यम पावा में महावीर ने निर्वाण लाभ किया था। जंभिय-गाम से लौट कर उन्होंने यहाँ महासेन उद्यान में अन्तिम चौमासा व्यतीत किया। जंभियगाम* और पावा के बीच बारह योजन का फासला था।

जिनप्रभ सूरि के कथनानुसार महावीर के निर्वाणपद पाने के पूर्व यह नगरी अपापा कही जाती थी, बाद में इसका नाम पावा हो गया।

दिवाली पर यहाँ बड़ा मेला लगता है, जिसमें जैन यात्री दूर-दूर से आते हैं। यहाँ जलमन्दिर में महावीर के गणधर गौतम और सुधर्मा की पादुकाएँ बनी हुई हैं।

बिहार से ७ मील के फासले पर पावापुरी को प्राचीन पावा माना जाता है।

गोब्बरगाम में महावीर ने विहार किया था। महावीर के तीन गणधर

---

* जंभियगाम और ऋजुवालिका नदी के विषय में जानने के लिये देखिये मुनि न्यायविजय जी का 'जैन तीर्थों नो इतिहास', पृ. ४६५-६.

की यह जन्मभूमि थी। यह स्थान राजगृह और चम्पा के बीच में था।

अंग एक प्राचीन जनपद था। वस्तुतः बुद्ध के समय अंग मगध के ही अधीन था। इसीलिए प्राचीन ग्रन्थों में अंग-मगध का एक साथ उल्लेख किया गया है। रामायण के अनुसार यहाँ शिवजी ने अंग (कामदेव) को भस्म किया था, अतएव इस स्थान का नाम अंग पड़ा। जैन ग्रन्थों में अंग का उल्लेख सिंहल, बर्बर, किरात, यवनद्वीप, आरबक, रामक, आलमन्द और कच्छ के साथ किया गया है।

अंग देश मगध के पूर्व में था। इसकी पहचान भागलपुर जिले से की जाती है।

चम्पा अंग देश की राजधानी थी। जैन ग्रन्थों के अनुसार राजा दधिवाहन यहाँ राज्य करता था। चम्पा का उल्लेख महाभारत में आता है। इसका दूसरा नाम मालिनी था। जैन सूत्रों में चम्पा की गणना सम्मेदशिखर आदि पवित्र तीर्थों में की गई है।

महावीर, बुद्ध तथा उनके शिष्यों ने चम्पा में अनेक बार विहार किया था और अनेक महत्त्वपूर्ण सूत्रों का प्रतिपादन किया था। यहाँ रहकर शय्यंभव सूरि ने दशवैकालिक नामक जैन सूत्र की रचना की थी। चम्पा की गणना सिद्धक्षेत्रों में की गई है।

औपपातिक सूत्र में चम्पा का वर्णन करते हुए कहा है :—

> "चम्पा नगरी अतीव समृद्धिशाली थी, प्रजा यहाँ की खुशहाल थी, सैकड़ों-हजारों हलों द्वारा यहाँ की जुताई होती थी, नगरी के आसपास अनेक गाँव थे। यह नगरी ईख, जौ, चावल आदि धान्य, तथा गाय, भैंस, मेढ़े आदि धन से समृद्ध थी। यहाँ सुन्दर चैत्य तथा वेश्याओं के अनेक भवन थे। नट, नर्तक, बाजीगर, पहलवान, मुष्टियुद्ध करनेवाले, कथावाचक, रास-गायक, बाँस की नोक पर खड़े होकर तमाशा दिखानेवाले, चित्रपट दिखाकर भिक्षा माँगनेवाले तथा वीणा-वादक आदि लोग यहाँ रहते थे। यह नगरी बाग-बगीचे, कुएँ, तालाब, बावड़ी आदि से मण्डित थी।

इसके आगे और गहरी खाई थी। चक्र, गदा, मुसुण्ढी (एक प्रकार की गदा), शतघ्नी (तलवार अथवा भाले के समान चलाया जाने वाला यन्त्र), कपाट आदि के कारण दुष्प्रवेश थी। चारों ओर से यह परकोटे से घिरी थी। कपिशीर्षक (कंगूरे), अटारी, गोपुर तथा तोरण आदि से शोभायमान थी। अनेक वणिक् तथा शिल्पी यहां माल बेचने आते थे। सुन्दर यहाँ की सड़कें थी, और हाथी, घोड़े, रथ, पैदल तथा पालकियों के गमनागमन से शोभित थी।"

चम्पा नगरी में पूर्णभद्र यक्ष का एक प्राचीन चैत्य था, जहाँ महावीर ठहरा करते थे। यह चैत्य ध्वजा, छत्र और घण्टियों से मण्डित था, वेदिका से शोभित था। भूमि यहाँ की गोबर से लिपी हुई थी, गोशीर्ष चन्दन के थापे लगे हुए थे, चन्दन-कलश रक्खे हुए थे, द्वार पर तोरण बँधी थी, सुगन्धित मालाएँ लटकी हुई थीं, रङ्ग-बिरंगे सुगन्धित पुष्प बिखरे हुए थे, सर्वत्र धूप महक रही थी, तथा नट, नर्तक, गायक, वादक आदि का यह निवास-स्थान था।

बौद्ध सूत्रों से पता लगता है कि चम्पा में गर्गरा नाम की एक पुष्करिणी थी। इसके किनारे सुन्दर चम्पक के वृक्ष लगे थे, जिन पर सुगन्धित श्वेत रङ्ग के फूल खिलते थे।

कहते हैं कि राजा श्रेणिक के मरने पर राजा कूणिक को राजगृह में रहना अच्छा न लगा, अतएव उसने चम्पक के सुन्दर वृक्षों को देख कर चम्पा नगर बसाया। राजा कूणिक का अपनी रानियों समेत भगवान महावीर के दर्शन के लिये जाने का विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र में आता है।

चम्पा व्यापार का बड़ा केन्द्र था। यहाँ के व्यापारी माल बेचने के लिये मिथिला, अहिच्छत्रा, सुवर्णभूमि आदि दूर-दूर स्थानों को जाते थे। चम्पा और मिथिला में साठ योजन का अन्तर था।

भागलपुर के पास वर्तमान नाथनगर को प्राचीन चम्पा माना जाता है।

चम्पा का शाखानगर (सबर्ब) पृष्ठचम्पा था। यह चम्पा के पश्चिम में था। महावीर ने यहाँ चातुर्मास किया था।

जैन ग्रन्थों में मन्दिर या मन्दार को पवित्र तीर्थ माना गया है। इसकी गणना सिद्धक्षेत्रों में की जाती है। ब्राह्मण पुराणों में भी मन्दार का उल्लेख आता है।

इसकी पहचान भागलपुर से दक्षिण की ओर तीस मील की दूरी पर दार-

गिरि से की जाती है। पहाडी के ऊपर शीतल जल के कुण्ड हैं।

जैन सूत्रों के अनुसार काकन्दी मे बहुत से श्रमणोपासक रहते थे। काकन्दिया जैन श्रमणो की शाखा थी। महावीर ने इस नगरी मे विहार किया था।

मुंगेर जिले के काकन नामक स्थान को प्राचीन काकन्दी माना जाता है। कुछ लोग गोरखपुर जिले के अन्तर्गत खखुंदो ग्राम को काकन्दी मानते है।

भद्दिय मे बुद्ध और महावीर ने विहार किया था। बौद्ध सूत्रो के अनुसार भद्दिय अग देश मे था। इसकी पहचान मुगेर से की जाती है। मुगेर का प्राचीन नाम मुग्गलगिरि था।

गया के दक्षिण मे **मलय** नाम का जनपद था। यह वस्त्र के लिये प्रसिद्ध था।

भद्रिलपुर मलय की राजधानी थी। भद्रिलपुर की गणना अतिशय क्षेत्रो मे की गई है।

भद्रिलपुर की पहचान हजारीबाग जिले के भदिया नामक गॉव मे की जाती है। यह स्थान हटरगज से ६ मील की दूरी पर कुलुहा पहाडी के पास है। यहॉ अनेक खडित जिन मूर्तियॉ मिली है। यह तीर्थ विच्छिन्न है। आश्चर्य है कि जैन लोगों ने इसे तीर्थ मानना छोड दिया है!

हजारीबाग जिले का दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थान सम्मेदशिखर है। इसे समाधिगिरि, समिदगिरि, मल्लपर्वत, अथवा शिखर भी कहा जाता है। सम्मेदशिखर की गणना शत्रुजय, गिरनार, आबू और अष्टापद नामक तीर्थों के साथ की गई है। यहॉ से जैनो के २४ तीर्थकरो मे से २० तीर्थकरों का निर्वाण हुआ माना जाता है।

सम्मेदशिखर की पहचान वर्तमान पारसनाथ हिल मे की जाती है। यह पहाड़ी ईसरी स्टेशन से दो मील की दूरी पर है।

मलय देश के आसपास का प्रदेश **भंगि** जनपद कहलाता था। इस जनपद

में हजारीबाग और मानभूम जिले गर्भित होते हैं।

पावा भंगि जनपद की राजधानी थी। मल्लों की पावा से यह भिन्न है।

कयंगला का उल्लेख जैन और बौद्ध सूत्रों में मिलता है। महावीर और बुद्ध ने यहाँ विहार किया था, बुद्ध यहाँ बेलुवन में ठहरे थे। इस प्रदेश का पुराना नाम औदुम्बर था। उदुम्बरिज्जिया नामक जैन श्रमणों की शाखा का उल्लेख कल्पसूत्र में आता है।

कयंगला की पहचान संथाल परगना के अंतर्गत ककजोल स्थान से की जाती है।

मगध के उत्तर में विदेह जनपद था। ब्राह्मण ग्रन्थों में विदेह की राजा जनक की राजधानी बताया गया है। बौद्ध सूत्रों में जो वज्जियों के आठ कुल गिनाये हैं, उनमें वैशाली के लिच्छवि और मिथिला के विदेह मुख्य थे। कल्पसूत्र में वज्जनागरी (वार्जनागरी=वृजिनगर की शाखा) नामक जैन श्रमणों की शाखा का उल्लेख आता है। महावीर की माता त्रिशला विदेह देश की होने से विदेहदत्ता कही जाती थी, और विदेहवासी चेलना का पुत्र कूणिक वज्जि विदेहपुत्र कहा जाता था।

विदेह व्यापार का बड़ा केन्द्र था। व्यापारी लोग श्रावस्ति आदि दूरवर्ती नगरों से यहाँ आते थे।

वर्तमान तिरहुत को प्राचीन विदेह माना जाता है।

मिथिला विदेह की राजधानी थी। रामायण में मिथिला को जनकपुरी कहा गया है। बुद्ध और महावीर ने यहाँ अनेक बार विहार किया था। मैथिलिया जैन श्रमणों की शाखा थी। आर्य महागिरि यहाँ आये थे। मिथिला अकंपित गणधर की जन्मभूमि थी। चौथे निह्नव की यहाँ स्थापना हुई थी।

जिनप्रभ सूरि के समय मिथिला जगइ नाम से प्रसिद्ध थी। उस समय यहाँ अनेक कदलीवन, मीठे पानी की बावड़ियाँ, कुएँ, तालाब और नदियाँ मौजूद थीं। नगरी के चार दरवाजों पर चार बड़े बाजार थे। यहाँ के साधारण लोग भी विविध शास्त्रों के पंडित होते थे, तथा यहाँ पातालिंग आदि अनेक तीर्थ मौजूद थे।

किसी समय मिथिला प्राचीन भारतीय सभ्यता तथा विद्या का केन्द्र था। ईसवी सन की ९वीं सदी में यहाँ प्रसिद्ध विद्वान् मंडन मिश्र निवास करते थे, जिनकी पत्नी ने शङ्कराचार्य से शास्त्रार्थ कर उन्हे पराजित किया था। यह नगरी प्रसिद्ध नैयायिक वाचस्पति मिश्र की जन्मभूमि थी, तथा मैथिल कवि विद्यापति यहाँ के राजदरबार मे रहते थे।

नैपाल की सीमा पर जनकपुर को प्राचीन मिथिला माना जाता है।

वैशाली विदेह की दूसरी महत्त्वपूर्ण राजधानी थी। वैशाली प्राचीन वज्जी गणतन्त्र की मुख्य नगरी थी। यहाँ के लोग लिच्छवि कहलाते थे। ये लोग आपस मे इकट्ठे होकर प्रत्येक विषय की चर्चा करते, और सब मिलकर राज्य का प्रबंध करते थे। इन लोगों की एकता की प्रशंसा बुद्ध भगवान् ने की थी। वैशाली की कन्याओं का विवाह वैशाली मे ही होता था। वैशाली गंडकी (गंडक) के किनारे बसी थी। बुद्ध और महावीर ने यहाँ अनेक बार विहार किया था। वैशाली महावीर का जन्म-स्थान था, इसलिए वे वैशालीय कहे जाते थे। दीक्षा के पश्चात् उन्होंने यहाँ १२ चातुर्मास व्यतीत किये।

वैशाली मध्यदेश का सुन्दर नगर माना जाता था। बुद्ध के समय यह बहुत उन्नत दशा मे था। यहाँ अनेक उद्यान, आराम बावडी, तालाब तथा पोखरणियाँ थी। अम्बापाली नाम की गणिका वैशाली की परम शोभा मानी जाती थी। बुद्ध ने यहाँ स्त्रियों को भिक्षुणी बनने का अधिकार दिया था।

जैन ग्रन्थों के अनुसार चेटक वैशाली का प्रभावशाली राजा था। उसकी बहन त्रिशला महावीर की माता थी। चेटक काशी-कोशल के अठारह गण-राजाओं का मुखिया था। राजा कूणिक और चेटक मे घोर संग्राम हुआ, जिसमे चेटक पराजित हो गया, और कूणिक ने वैशाली मे गधों का हल चलाकर उसे खेत कर डाला।

हुअन-सांग के समय वैशाली उजाड हो चुकी थी।

मुज़फ्फरपुर जिले के बसाढ ग्राम को प्राचीन वैशाली माना जाता है।

वैशाली के पास कुण्डपुर नाम का नगर था। यहाँ महावीर का जन्म हुआ था। कुण्डपुर क्षत्रियकुण्डग्राम और ब्राह्मणकुण्डग्राम नामक दो मोहल्लों मे बँटा था। पहले मोहल्ले मे क्षत्रिय और दूसरे मे ब्राह्मण रहते थे। कुण्डपुर

में ज्ञातृखण्ड नाम का सुन्दर उद्यान था, जहाँ महावीर ने दीक्षा ग्रहण की थी। इस उद्यान की गणना ऊर्जयन्त और सिद्धशिला नामक पवित्र क्षेत्र के साथ की गई है।

आधुनिक बसुकुण्ड को कुण्डपुर माना जाता है।

वैशाली का दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थान वाणियगाम था। वैशाली और वाणियगाम के बीच गण्डकी नदी बहती थी। यहाँ आनन्द आदि अनेक समृद्ध जैन श्रमणोपासक रहते थे।

आधुनिक बनिया को वाणियगाम माना जाता है।

वाणियगाम के उत्तर-पूर्व में कोल्लाग था। यहाँ आनन्द श्रावक के सगे-सम्बन्धी रहते थे। दीक्षा के पश्चात् महावीर ने यहाँ प्रथम भिक्षा ग्रहण की थी।

बसाट के उत्तर-पश्चिम में वर्तमान कोल्हुआ को कोल्लाग माना जाता है। नालन्दा के समीपवर्ती कोल्लाग से यह भिन्न है।

कोल्लाग के पास अट्ठियगाम नाम का गाँव था इसे वर्धमान भी कहते थे। यहाँ वेगवती (गण्डकी) नाम की नदी बहती थी। शूलपाणि यक्ष का यहाँ बड़ा मन्दिर था। महावीर ने अट्ठियगाम में प्रथम चातुर्मास व्यतीत किया था।

वैशाली के पास आमलकप्पा नाम का नगर था जहाँ पार्श्वनाथ और महावीर ने विहार किया था।

२ : नैपाल

नैपाल में जैन और बौद्ध श्रमणों ने विहार किया था। आजकल भी यहाँ बौद्ध धर्म का बहुत प्रचार है। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार, पाटलिपुत्र में दुर्भिक्ष पड़ने पर भद्रबाहु, स्थूलभद्र तथा अन्य अनेक जैन आचार्यों ने यहाँ विहार किया था।

यहाँ सम्राट् अशोक के निर्माण किये हुए प्राचीन स्तूप मिलते हैं। नैपाल का राजा अंशुवर्मा लिच्छवि वंश का था।

नैपाल की पहचान आधुनिक नैपाल राज्य से की जाती है यह जनकपुर से १२० मील की दूरी पर है।

३ : उड़ीसा

कलिंग देश का नाम अंग और वंग के साथ आता है। वर्तमान उड़ीसा को कलिंग माना जाता है। उड़ीसा को ओड़ या उत्कल नाम से भी कहा जाता था।

जातक ग्रन्थों में दन्तपुर, महाभारत में राजपुर, महावस्तु में सिंहपुर और जैन सूत्रों में कांचनपुर को कलिंग की राजधानी बताया है। सातवीं सदी में कलिंगनगर भुवनेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुआ, जो आजतक इसी नाम से प्रख्यात है।

कांचनपुर में जैन श्रमणों ने विहार किया था। यह नगर व्यापार का केन्द्र था, और यहाँ के व्यापारी लङ्का तक जाते थे।

आधुनिक भुवनेश्वर को प्राचीन कांचनपुर माना जाता है।

पुरी (जगन्नाथपुरी) उड़ीसा की दूसरी मुख्य नगरी थी। यह नगरी जैन और बौद्ध धर्म का केन्द्र थी। यहाँ जीवन्तस्वामी-प्रतिमा थी, और आचार्य वज्रस्वामी ने यहाँ विहार किया था। उस समय यहाँ बौद्ध राजा राज्य करता था, जैन और बौद्धों में वैमनस्य रहता था। जैनों की मान्यता के अनुसार पुरी पहले पार्श्वनाथ का तीर्थ था। आजकल यह तीर्थ विच्छिन्न है।

पुरी व्यापार का बड़ा केन्द्र था, और यहाँ जलमार्ग से माल आना-जाता था। आजकल यहाँ रथयात्रा का बड़ा उत्सव मनाया जाता है।

भुवनेश्वर स्टेशन से लगभग चार मील पर उदयगिरि और खण्डगिरि नाम की प्राचीन पहाड़ियाँ हैं, जिन्हें काट-काट कर सुन्दर गुफाएँ बनाई गई हैं। इनमें लगभग सौ जैन गुफाएँ हैं जो मूर्तिकला की दृष्टि से महत्त्व की हैं। ये गुफाएँ ईसवी सन के ५०० वर्ष पूर्व के पहले से लेकर ईसवी सन् ५०० तक की बताई जाती हैं। प्रसिद्ध हस्तिगुफा यहीं पर है जिसमें सम्राट् खारवेल (ईसवी सन के १६१ वर्ष पूर्व) का शिलालेख है। सम्राट् खारवेल जैनधर्म का अनुयायी था, और उसने मगध से जिन-प्रतिमा लाकर यहाँ स्थापित की थी। उदयगिरि का प्राचीन नाम कुमारी पर्वत है, यहाँ सम्राट खारवेल के

निर्माण किये हुए कई जिन मन्दिर हैं। उदयगिरि और खण्डगिरि अतिशय क्षेत्र माने जाते है।

तोसलि जैन श्रमणों का केन्द्र था। यहाँ का तोसलिक राजा जिन-प्रतिमा की देखरेख किया करता था। महावीर ने यहाँ विहार किया था, और यहाँ उन्हें अनेक कष्ट सहन करने पड़े थे। तोसलि के निवासी फल-फूल के बहुत शौकीन होते थे। यहां नदियों के पानी से खेती होती थी, कभी वर्षा अधिक होने से फसल नष्ट हो जाती थी। ऐसे संकट के समय जैन श्रमण ताड के फल खाकर निर्वाह करते थे। तोसलि मे अनेक तालाब (तालोदक) थे। यहाँ की भैंसे बहुत मरखनी होती थी, और वे अपने सींगों से मनुष्यों को मार डालती थी। तोसलि आचार्य की मृत्यु भैंस के मारने से हुई थी।

तोसलि की पहचान कटक जिले के धौलि नामक गाँव से की जाती है।

शैलपुर तोसलि के अन्तर्गत था। यहाँ ऋषिपाल नामक व्यन्तर का बनाया हुआ ऋषितडाग* नामक एक तालाब था। इस तालाब का उल्लेख हाथी-गुफा के शिलालेखों में मिलता है। यहाँ लोग आठ दिन तक उत्सव (सखडि) मनाते थे।

तोसलि के पास हस्तिशीर्ष नाम का नगर था। व्यापार का यह बड़ा केन्द्र था। महावीर ने यहाँ विहार किया था।

४ : बंगाल

बंग अथवा बंगाल की गणना भारत के प्राचीन जनपदों में की गई है। अंग और बंग का उल्लेख महाभारत मे आता है।

प्राचीन काल मे वर्तमान बंगाल भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता था। पूर्वीय बंगाल को समतट, पश्चिमी को लाढ, उत्तरी को पुण्ड्र, तथा आसाम को कामरूप कहा जाता था। बंगाल को गौड भी कहते थे। जब फाहियान

---

* कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्वर्गीय प्रो० डॉ० बेनीमाधव बडुआ ने इस स्थान का पता लगाया है।

और हुअन-साग यहाँ आये तो यहाँ बौद्ध धर्म फैला हुआ था। गौड देश में रेशम के कपडे अच्छे बनते थे।

जैन सूत्रों के अनुसार बंग देश की राजधानी ताम्रलिप्ति थी। महाभारत में इस नगरी का उल्लेख आता है। जैन ग्रन्थों के अनुसार यहाँ विद्युच्चर मुनि ने मुक्ति पाई थी। ताम्रलिप्ति व्यापार का बडा केन्द्र था, और यहाँ जल-स्थल मार्ग से व्यापार होता था। यहाँ का कपड़ा बहुत अच्छा होता था। व्यापारी लोग यहाँ से जहाज में बैठकर लंका, जावा, चीन आदि देशों को जाते थे। हुअन-सांग के समय यहां अनेक बौद्ध मठ विद्यमान थे।

रूपनारायण नदी के पश्चिमी किनारे पर स्थित तामलुक को प्राचीन ताम्रलिप्ति माना जाता है।

जैन सूत्रों में लाढ अथवा राढ देश की गणना साढे पच्चीस आर्य देशों में की गई है। यह देश पहले अनार्य देशों में गिना जाता था, लेकिन मालूम होता है महावीर के विहार के पश्चात् यह आर्य क्षेत्र माना जाने लगा। लाढ के विषय में पहले कहा जा चुका है। यहाँ महावीर ने अनेक कष्ट सहे थे। लाढ को सुह्म भी कहा गया है। भगवती सूत्र में सुह्मोत्तर (सम्भुत्तर—सुह्म का उत्तरी भाग) की गणना प्राचीन १६ जनपदों में की गई है।

लाढ वज्रभूमि (वृज्जियों की भूमि) और सुब्भभूमि (सुह्म) नामक दो प्रदेशों में विभक्त था।

जैन सूत्रों के अनुसार कोटिवर्ष लाढ देश की राजधानी थी। कोडिवरि-सिया नामक जैन श्रमणों की शाखा थी। कोटिवर्ष के राजा किरात का उल्लेख जैन सूत्रों में आता है। गुप्त-कालीन शिलालेखों में इस नगर का उल्लेख मिलता है।

कोटिवर्ष की पहचान दीनाजपुर जिले के बानगढ नामक स्थान से की जाती है।

दढभूमि लाढ देश का एक भाग था। यहाँ अनेक म्लेच्छ बसते थे। दढभूमि की पहचान आधुनिक धालभूम से की जाती है।

धन्यकटक में जैनों के १३ वे तीर्थंकर का दीक्षा के बाद पहला पारणा हुआ था।

इसकी पहचान बालासर जिले के कोपारी नामक स्थान से की जाती है।

पुरिमताल, लोहग्गला राजधानी, उन्नाट और गोभूमि का उल्लेख महावीर की विहार-चर्या में आ चुका है।

पुरिमताल की सीमा पर सालाटवी नामक चोरों का एक गाँव था।

पुरिमताल की पहचान मानभूम के पास पुरुलिया नामक स्थान से की जा सकती है। दूसरा पुरिमताल अयोध्या का शाखानगर था। कोई लोग प्रयाग को पुरिमताल कहते हैं।

लोहग्गला की पहचान छोटा नागपुर डिवीजन के उत्तर-पश्चिम में लोहरडग्गा* नामक स्थान से की जा सकती है।

उन्नाट नगर का उल्लेख महाभारत में मिलता है।

गोभूमि में अनेक गायें चरने के लिये आती थीं, इसलिये इस जगह का नाम गोभूमि रक्खा गया। इसकी पहचान आधुनिक गोमोह से की जा सकती है।

खब्बड अथवा दासी खब्बड नामक जैन श्रमणों की शाखा का उल्लेख जैन सूत्रों में मिलता है।

इसकी पहचान पश्चिमी बंगाल में मिदनापुर जिले के पास खर्वट नामक स्थान से की जाती है।

वर्धमानपुर नगर में विजयवर्धमान नामक उद्यान-स्थित मणिभद्र यक्ष के मन्दिर में महावीर भगवान् ठहरे थे।

---

* लोहरडग्गा मुंडा भाषा का शब्द है। 'रोहोर' का अर्थ है 'सूखा' और 'ड' का अर्थ है 'पानी'। इस स्थान पर पानी का एक झरना था जो बाद में सूख गया। इस कारण इस स्थान का नाम 'लोहरडग्गा' पड़ा। देखिए, एस० सी० रॉय, 'द मुण्डा एण्ड देअर कन्ट्री', पृष्ठ १३३.

वर्धमानपुर की पहचान बर्दवान से की जा सकती है।

पुण्ड्रवर्धन उत्तरी बंगाल का हिस्सा था। पुण्डवर्द्धणिया जैन श्रमणों की शाखा थी। यहाँ गायों को खाने के लिए पौंडे दिये जाते थे, यहाँ की गायें मरखनी होती थीं। वरेन्द्र पुण्ड्रवर्धन का प्रमुख नगर था। हुअन-सांग ने यहाँ दिगम्बर निर्ग्रन्थों के पाये जाने का उल्लेख किया है।

पुण्ड्रवर्धन की पहचान बोगरा जिले के महास्थान नामक प्रदेश में की जाती है। यह उत्तरापथ के पुण्ड्रवर्धन से भिन्न है।

खोमलिज्जिया (या कोमलीया) जैन श्रमणों की शाखा थी।

कोमला की पहचान पूर्वीय बङ्गाल में चटगाँव जिले के कोमिल्ला नामक स्थान से की जा सकती है।

५ : बरमा

सुवर्णभूमि (बरमा) में जैन श्रमणों ने विहार किया था। जैन ग्रन्थों से पता लगता है कि आचार्य कालक उज्जयिनी से सुवर्णभूमि जाकर सागरक्षमण से मिले। इससे पता लगता है कि जैन श्रमणों का यहाँ प्रवेश हुआ था। सुवर्णभूमि व्यापार का बड़ा केन्द्र था।

५

उत्तरप्रदेश

प्राचीन भारत के मध्यदेश के बहुसंख्यक जनपद आधुनिक उत्तरप्रदेश में आते हैं, इससे मालूम होता है कि प्राचीन काल में यह प्रदेश बहुत समृद्ध और उन्नत दशा में था। कौरव-पाण्डवों का निवास-स्थान कुरु देश, राम-लक्ष्मण की जन्मभूमि अयोध्या, कृष्ण महाराज के क्रीड़ास्थल मथुरा और वृन्दावन, बुद्धदेव की निर्वाणभूमि कुशीनारा, गणराजाओं के देश काशी और कोशल, मल्लों की राजधानियाँ कुशीनारा और पावा, तथा वाराणसी, प्रयाग, हरिद्वार, मथुरा, कौशांबी और सारनाथ जैसे पवित्र स्थान इसी प्रान्त की शोभा बढ़ाते हैं।

१ : पूर्वीय उत्तर प्रदेश

काशी मध्यदेश का प्राचीन जनपद था। काशी के वस्त्र और चन्दन का उल्लेख बौद्ध जातकों में मिलता है। प्राचीन जैन सूत्रों में काशी और कोशल के अठारह गण राजाओं का जिक्र आता है। काशी को जीतने के लिए कोशल के राजा पसेनदि और मगध के राजा अजातशत्रु में युद्ध हुआ था, जिसमें अजातशत्रु की विजय हुई और काशी को मगध में मिला लिया गया। जैन मान्यता के अनुसार यहाँ के राजा शंख को महावीर ने दीक्षित किया था। काशी व्यापार का बड़ा केन्द्र था।

आजकल की बनारस कमिश्नरी को प्राचीन काशी माना जाता है।

वाराणसी (बनारस) काशी की राजधानी थी। वरणा और असि नामक दो नदियों के बीच होने के कारण इस नगर का नाम वाराणसी पड़ा।

वाराणसी गंगा के किनारे बसी थी। इस स्थान को बुद्ध और महावीर ने

अपने विहार से पवित्र किया था। बौद्ध सूत्रों में वाराणसी की गणना कपिलवस्तु, बुद्धगया और कुसीनारा के साथ की गई है। ब्राह्मण ग्रन्थों में पूर्व में वाराणसी, पश्चिम में प्रभास, उत्तर में केदार और दक्षिण में श्रीपर्वत को परम तीर्थ माना गया है। जैन ग्रन्थों के अनुसार यहाँ भेलुपुर में पार्श्वनाथ और भदैनी में सुपार्श्वनाथ का जन्म हुआ था।

जिनप्रभसूरि के कथनानुसार बनारस चार भागों में विभक्त था:—देव वाराणसी, राजधानी वाराणसी, मदन वाराणसी और विजय वाराणसी। यहाँ दन्तखात नाम का प्रसिद्ध तालाब था, तथा मणिकर्णिका घाट यहाँ के पवित्र पाँच घाटों में गिना जाता था। मयगतीर (मृतगंगातीर) नाम का यहाँ दूसरा प्रसिद्ध तालाब (ह्रद) था, जिसमें गङ्गा का बहुत-सा पानी इकट्ठा हो जाता था।

हुअन-सांग के समय यहाँ अनेक बौद्ध विहार और हिन्दू मन्दिर मौजूद थे।

वाराणसी व्यापार और विद्या का केन्द्र था। यहाँ के विद्यार्थी तक्षशिला विद्याध्ययन के लिये जाते थे, तथा यहाँ शास्त्रार्थ हुआ करते थे।

बनारस में आजकल भी अनेक मन्दिर, मूर्तियाँ और प्राचीन स्थान मौजूद हैं। आचार्य हेमचन्द्र के समय काशी वाराणसी का ही दूसरा नाम था।

इसिपतन बौद्धों का परम तीर्थ माना जाता है। यहाँ बुद्ध भगवान का प्रथम धर्मोपदेश हुआ था। यहाँ की खुदाई में प्राचीन काल के ध्वंसावशेष उपलब्ध हुए हैं। जैन ग्रंथों में इसे सिंहपुर नाम से कहा गया है। यहाँ शीतलनाथ नामक जैन तीर्थंकर का जन्म हुआ था।

सिंहपुर की पहचान वर्तमान सारनाथ (सारङ्गनाथ) से की जाती है। यह स्थान बनारस के उत्तर में छह मील की दूरी पर है। यहाँ एक अजायबघर और बौद्ध मन्दिर है।

चन्द्रानन चन्द्रप्रभ तीर्थंकर का जन्म-स्थान माना जाता है। १७-१८वीं सदी के जैन यात्रियों ने इसका नाम चन्द्रमाधव लिखा है। विविधतीर्थकल्प के अनुसार चन्द्रावती नगरी बनारस से अढ़ाई योजन की दूरी पर थी।

चन्द्रानन की पहचान आधुनिक चन्द्रपुरी से की जाती है। यह स्थान गङ्गा के किनारे है और बनारस से लगभग चौदह मील के फासले पर है।

आलभिया जैन श्रमणोपासकों का केन्द्र था। यहाँ महावीर और बुद्ध ने चातुर्मास व्यतीत किया था। गोशाल यहाँ पत्तकालय उद्यान में ठहरे थे। बौद्ध सूत्रों में इसे आलवी कहा गया है। यह स्थान श्रावस्ति और राजगृह के बीच बनारस से बारह योजन दूर था।

काशी से सटा हुआ **वत्स** जनपद था। बौद्ध सूत्रों में इसे वंश कहा गया है। वत्साधिपति उदयन का उल्लेख ब्राह्मण, बौद्ध और जैन ग्रन्थों में मिलता है।

प्रयाग के इर्दगिर्द के प्रदेश को वत्स कहते हैं।

कौशाम्बी वत्स की राजधानी थी। कौशाम्बी का उल्लेख महाभारत और रामायण में आता है। कहते हैं कि हस्तिनापुर के गङ्गा से नष्ट हो जाने पर राजा परीक्षित के उत्तराधिकारियों ने कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया। बुद्ध और महावीर ने यहाँ विहार किया था। यहाँ कुक्कुटाराम, घोसिताराम पावरिक, अम्बवन आदि उद्यानों का उल्लेख बौद्ध सूत्रों में आता है, जहाँ भगवान बुद्ध ठहरा करते थे। कहा जाता है कि एक बार कौशाम्बी के बौद्ध भिक्षुओं में बहुत झगड़ा हो गया, बुद्ध ने कौशाम्बी पहुँच कर भिक्षुओं को बहुत समझाया, परन्तु कोई फल न हुआ।

कौशाम्बी जैनों का अतिशय क्षेत्र माना जाता है। यहाँ पद्मप्रभ तीर्थंकर का जन्म हुआ था। यहीं महावीर की प्रथम शिष्या चन्दनबाला और रानी मृगावती श्रमण धर्म में दीक्षित हुई थीं। कहते हैं कि उज्जैनी के राजा प्रद्योत ने रानी मृगावती को पाने के लिये कौशाम्बी के राजा शतानीक पर चढ़ाई कर दी। शतानीक की अतिसार से मृत्यु हो गई। बाद में अपने पुत्र उदयन को राजगद्दी पर बैठा कर मृगावती ने महावीर से दीक्षा ले ली।

आर्य सुहस्ति और आर्य महागिरि कौशाम्बी आये थे। बौद्ध ग्रन्थों से पता लगता है कि कौशाम्बी में बुद्ध भगवान की रक्तचन्दन-निर्मित सुन्दर प्रतिमा थी, जिसे राजा उदयन ने अपने खास कारीगरों से बनवाया था। सम्राट् अशोक ने यहाँ बौद्ध स्तूप निर्माण कराया था।

इलाहाबाद से लगभग तीस मील की दूरी पर कोसम गाँव को प्राचीन

कौशांबी माना जाता है। यह तीर्थ विच्छिन्न है। यहाँ सूर्य की बड़ी भव्य सुन्दर मूर्ति है।

कौशांबी के पास प्रयाग था। महाभारत में इसका उल्लेख आता है। जैन ग्रन्थों में प्रयाग को तीर्थक्षेत्र माना गया है। यहाँ अर्णिकापुत्र को गङ्गा पार करते समय केवलज्ञान हुआ था। प्रयाग को दिनिप्रयाग भी कहा गया है। पालि साहित्य में इसे पयागपतिट्ठान कहा है।

प्रयाग आजकल गङ्गा, जमुना और सरस्वती (गुप्त) के संगम पर अवस्थित है। यह ब्राह्मणों का परम धाम माना जाता है। अक्षयवट यहाँ का परम पवित्र स्थान है। प्रयाग में मुण्डन का बड़ा माहात्म्य है। बादशाह अकबर के समय से इसका नाम इलाहाबाद पड़ा।

सुप्रतिष्ठानपुर, प्रतिष्ठानपुर या पोतनपुर प्रयाग की राजधानी थी। यहाँ चन्द्रवंशी राजा राज्य करते थे। यह नगर गङ्गा के किनारे बसा था।

आजकल यह स्थान इलाहाबाद जिले में झूँसी के पास है। दक्षिण के प्रतिष्ठान से यह भिन्न है।

तुङ्गिय संनिवेश कौशांबी के आसपास था। मेतार्य नामक महावीर के गणधर की यह जन्मभूमि थी।

प्राचीन काल में **कोसल** (अवध) एक समृद्ध जनपद था। जैनों के आदि तीर्थंकर ऋषभदेव ने यहाँ जन्म लिया था, इसलिए वे कौशलिक कहे जाते थे। अचल गणधर का यह जन्मस्थान था, और यहाँ जीवन्तस्वामी प्रतिमा विद्यमान थी। कोशल के राजा पसेनदि का उल्लेख बौद्ध सूत्रों में आता है।

साकेत (अयोध्या) दक्षिण कोशल की राजधानी थी। ब्राह्मण पुराणों में अयोध्या को मध्यदेश की राजधानी कहा है। यह नगर रामचन्द्र जी की जन्मभूमि थी। रामायण में अयोध्या का वर्णन करते हुए कहा है—"सरयू नदी के किनारे पर अवस्थित यह नगरी धन-धान्य से परिपूर्ण थी, सुन्दर यहाँ

मार्ग बने हुए थे, अनेक शिल्पी और देश-विदेश के व्यापारी यहाँ बसते थे। यहाँ के लोग समृद्धिशाली, धर्मात्मा, पराक्रमी और दीर्घायु थे, तथा अनेक उनके पुत्र-पौत्र थे।"

जैन परम्परा के अनुसार अयोध्या को आदि तीर्थ और आदि नगर माना गया है, और यहाँ के निवासियों को सभ्य और सुसंस्कृत बताया गया है।

बुद्ध और महावीर के समय अयोध्या को साकेत कहा जाता था। साकेत के सुभूमिभाग उद्यान में विहार करते हुए महावीर ने जैन श्रमणों के विहार की सीमा नियत की थी। यहीं उन्होंने कोटिवर्ष के राजा चिलात को दीक्षा दी थी। बुद्ध ने भी साकेत में विहार किया था।

इस नगरी को कोशला, विनीता, इक्ष्वाकुभूमि, रामपुरी, विशाखा आदि नामों से भी पुकारा जाता है। आजकल अयोध्या में ब्राह्मणों के अनेक तीर्थ बने हुए हैं। जिनप्रभ सूरि ने अपने विविधतीर्थकल्प में घग्घर (घाघरा) और सरयू नदी के सङ्गम पर 'स्वर्गद्वार' होने का उल्लेख किया है।

रत्नपुरी धर्मनाथ तीर्थंकर की जन्मभूमि मानी जाती है। जिनप्रभ सूरि के समय यह तीर्थ रत्नवाह नाम से पुकारा जाता था। जैन यात्रियों ने इसका रोहनाई नाम से उल्लेख किया है।

आजकल यह स्थान फैजाबाद के पास सोहावल स्टेशन से एक मील उत्तर की ओर है।

श्रावस्ति (सहेट-महेट, जिला गोंडा) उत्तर कोशल या कुणाल जनपद की राजधानी थी। श्रावस्ति का दूसरा नाम कुणालनगरी था। श्रावस्ति और साकेत के बीच सात योजन (१ योजन=५ मील) का अन्तर था।

श्रावस्ति अचिरावती (राप्ती) नदी के किनारे थी। जैन सूत्रों में कहा गया है कि इस नदी में बहुत कम पानी रहता था; इसके बहुत से प्रदेश सूखे रहते थे, और जैन साधु इस नदी को पार कर भिक्षा के लिये जा सकते थे। बौद्ध सूत्रों से पता लगता है कि इस नदी के किनारे स्नान करने के अनेक स्थान बने हुए थे। नगर की वेश्यायें यहाँ वस्त्र उतार कर स्नान करती थीं। उनकी देखादेखी बौद्ध भिक्षुणियाँ भी स्नान करने लगीं, इस पर बुद्ध ने उन्हें वहाँ स्नान करने से रोका। अचिरावती में बाढ़ आने से लोगों का बहुत नुक़-

मान होता था। एक बार तो नगरी के सुप्रसिद्ध धनी अनाथपिंडक का सब माल-खजाना नदी में बह गया था। श्रावस्ति की बाढ़ का उल्लेख आवश्यक-चूर्णि में भी मिलता है। जैन अनुश्रुति के अनुसार इस बाढ के १३ वर्ष बाद महावीर ने केवलज्ञान प्राप्त किया।

श्रावस्ति का रामायण और जातकों में उल्लेख आता है। बुद्ध और महावीर के समय यह नगरी बहुत उन्नत दशा में थी। इन महात्माओं ने यहाँ अनेक चातुर्मास व्यतीत किये थे। अनाथपिंडक के निर्माण किये हुए जेतवन में बुद्ध ठहरा करते थे। सूत्र और विनयपिटक के अधिकांश भाग का उन्होंने यहीं प्रवचन किया था। श्रावस्ति बौद्धों का बड़ा केन्द्र था। यहाँ के अनाथपिंडक और मृगारमाता विशाखा बुद्ध के बड़े प्रशंसक और प्रतिष्ठाता थे। आर्य स्कंद और गोशाल ने यहाँ विहार किया था। गोशाल की उपासिका हालाहला कुम्हारी यहीं रहती थी। पार्श्वनाथ के अनुयायी केशीकुमार और महावीर के अनुयायी गौतम गणधर में यहाँ सैद्धांतिक चर्चा हुई थी। महावीर को केवलज्ञान होने के १४ वर्ष पश्चात् यहाँ के कोष्ठक चैत्य में प्रथम निह्नव की स्थापना हुई।

जैन ग्रन्थों के अनुसार श्रावस्ति संभवनाथ की जन्मभूमि थी। आजकल यह तीर्थ विच्छिन्न है। बौद्ध सूत्रों के अनुसार श्रावस्ति के चार दरवाजे थे, जो उत्तरद्वार, पूर्वद्वार, दक्षिणद्वार और केवट्टद्वार के नाम से पुकारे जाते थे। विविधतीर्थकल्प में श्रावस्ति में एक मन्दिर और रक्त अशोक वृक्ष के होने का उल्लेख है। श्रावस्ति महेठि नाम से भी कही जाती थी।

जिनप्रभ सूरि के अनुसार यहाँ समुद्रवंशीय राजा राज्य करते थे। ये बुद्ध के परम उपासक थे, और बुद्ध के सम्मान में वरघोड़ा निकालते थे। श्रावस्ति में अनेक प्रकार का चावल पैदा होता था।

आजकल श्रावस्ति चारों ओर से जंगल से घिरी हुई है। यहाँ बुद्ध की एक विशाल मूर्ति है जिसके दर्शन के लिये बौद्ध लोग बरमा आदि सुदूर देशों से आते हैं। यह स्थान बलरामपुर से सात कोस की दूरी पर है और एक मील तक फैला हुआ है।

श्रावस्ति से पूर्व की ओर **केकय** जनपद था, जो उत्तर के केकय से भिन्न है। जैन सूत्रों में केकय के आधे भाग को आर्यक्षेत्र माना गया है, इससे पता

चलता है कि इसके थोड़े से भाग मे ही जैनधर्म का प्रसार हुआ था; सम्भवतः अवशिष्ट भाग मे जङ्गली जातियाँ बसती हों।

केकय देश श्रावस्ति के उत्तर-पूर्व में नैपाल की तराई में अवस्थित था।

सेयविया (श्वेतिका) केकय की राजधानी थी। बौद्ध सूत्रों में इसका नाम सेतव्या बताया गया है; यह नगरी कोशल देश में थी। जैन परम्परा के अनुसार यहाँ महावीर के केवलज्ञान होने के २१४ वर्ष बाद तीसरे निह्नव की स्थापना हुई।

बुद्ध की जन्मभूमि होने के कारण कपिलवस्तु को बौद्ध ग्रन्थों मे महानगर बताया गया है। शाक्यों की यह राजधानी थी। इसके पास रोहिणी नदी बहती थी, जो शाक्य और कोलियों के बीच की सीमा थी। चीनी यात्री फाहियान के समय यह नगर उजाड़ पड़ा था।

कपिलवस्तु की पहचान नैपाल की तराई मे रुम्मिनदेई नामक स्थान से की जाती है। यह स्थान घने जङ्गलो से आच्छादित है।

कुसीनारा बुद्ध की परिनिर्वाण भूमि होने से पवित्र स्थान माना जाता है। यह नगरी मल्लों की राजधानी थी; इसका पुराना नाम कुसावती था। सम्राट अशोक ने यहाँ अनेक स्तूप और विहार बनवाये थे। हुअन-साग ने इस तीर्थ के दर्शन किये थे।

कुसीनारा की पहचान गोरखपुर जिले के कसया नामक ग्राम से की जाती है।

कुसीनारा के पास पावा नगरी थी। यह मल्लो की राजधानी थी। कुसीनारा और पावा के बीच ककुत्था नदी बहती थी।

पावा की पहचान गोरखपुर जिले के पड़रौना नामक स्थान से की जाती है।

गोरखपुर ज़िले मे दूसरा स्थान खुखुन्दो है। इसका प्राचीन नाम किष्किन्धापुर बताया जाता है। जैन यात्री यहाँ यात्रा करने आते हैं। यहाँ पार्श्वनाथ की मूर्ति को लोग नाथ कह कर उसकी पूजा करते हैं। यह स्थान गोरखपुर के पूर्व में लगभग २५ कोस पर है।

२ : पश्चिमी उत्तरप्रदेश

प्राचीन काल मे **पांचाल** (रुहेलखण्ड) एक समृद्धिशाली जनपद था। महाभारत मे इसका अनेक जगह उल्लेख आता है। पाचाल मे जन्म होने के कारण द्रौपदी पाचाली कही जाती थी।

बदायूँ, फर्रुखाबाद और उसके इर्दगिर्द के प्रदेश को पाचाल माना जाता है।

भागीरथी नदी के कारण पाचाल देश दो भागो मे विभक्त था. एक दक्षिण पाचाल दूसरा उत्तर पाचाल। महाभारत के अनुसार दक्षिण पाचाल की राजधानी कापिल्य और उत्तर पांचाल की राजधानी अहिच्छत्रा थी।

कांपिल्यपुर अथवा कम्पिलनगर गङ्गा के तट पर बसा था। यहाँ बडी धूम-धाम से द्रौपदी का स्वयवर रचा गया था। जैनो के १३वे तीर्थकर विमलनाथ की यह जन्मभूमि थी। यहाँ महावीर के श्रावक रहते थे, और यहाँ इन्द्र महोत्सव मनाया जाता था।

कांपिल्यपुर की पहचान फर्रुखाबाद जिले के कपिल नामक स्थान से की जाती है। यहाँ बहुत-सी खडित प्रतिमाएँ मिली है। यहा कई जैन मन्दिर हैं और मूर्तियों पर लेख खुदे हैं।

दक्षिण पाचाल की दूसरी राजधानी माकदी थी। यह नगरी व्यापार का केन्द्र था। हरिभद्र सूरि की समराइच्चकहा मे इस नगरी का वर्णन आता है।

अहिच्छत्रा या अहिच्छत्र उत्तर पाचाल की राजधानी थी। जैन सूत्रों मे इसे जागल अथवा कुरु जागल की राजधानी बताया गया है। यह नगरी शख-वती, प्रत्यग्ररथ और शिवपुर नाम से भी पुकारी जाती थी। इसकी गणना अष्टापद, ऊर्जयन्त, गजाग्रपदगिरि, धर्मचक्र और रथावर्त नामक पवित्र तीर्थो के साथ की गई है।

जैन मान्यता के अनुसार यहाँ धरणेन्द्र ने अपने फण से पार्श्वनाथ की रक्षा की थी। लेकिन आजकल यह तीर्थ विच्छिन्न है। हुअन-साग के समय यहाँ नगर के बाहर नागह्रद था, जहाँ बुद्ध भगवान् ने सात दिन तक नागराज को उपदेश दिया था। इस स्थान पर सम्राट् अशोक ने स्तूप बनवाया था। जिनप्रभ सूरि के विविधतीर्थकल्प मे कहा गया है कि यहाँ ईटो का किला

और मीठे पानी के सात कुंड थे जिनमें स्नान करने से स्त्रियाँ पुत्रवती होती थीं। नगरी के बाहर और भीतर अनेक कुएँ, बावड़ी आदि बने थे जिनमें नहाने से कोढ़ आदि रोग शान्त हो जाते थे। यहाँ अनेक औषधियाँ मिलती थीं, तथा बहुत से तीर्थस्थान थे।

अहिच्छत्रा की पहचान बरेली जिले में रामनगर नामक स्थान से की जाती है। यहाँ बहुत से पुराने सिक्के और मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं, तथा प्राचीन खंडहर पड़े हुए हैं।

दक्षिण पांचाल में पूर्व की ओर कान्यकुब्ज नाम का समृद्ध नगर था। यह इन्द्रपुर, गाधिपुर, महोदय और कुशस्थल नामों से भी पुकारा जाता था।

कान्यकुब्ज सातवीं सदी से लेकर १०वीं सदी तक उत्तर भारत के साम्राज्य का केन्द्र और समूचे भारत का मुख्य नगर था। चीनी यात्री हुएन-सांग के आगमन के समय यहाँ राजा हर्षवर्धन का राज्य था। उस समय यह नगर शूरसेन में शामिल था।

कान्यकुब्ज की पहचान यमुना के पश्चिमी किनारे पर स्थित कन्नौज से की जाती है।

जैन सूत्रों में अंतरंजिया नगरी का उल्लेख आता है। अंतरंजिया जैन श्रमणों की शाखा थी, इससे पता लगता है कि यह स्थान जैनों का केन्द्र था। रोहगुप्त आचार्य ने यहाँ छठे निह्नव की स्थापना की थी। आइने अकबरी में इसे कन्नौज का परगना बताया गया है।

अंतरंजिया की पहचान एटा जिले के अतरंजिया नामक खेड़े से की जाती है। यह स्थान काली नदी पर है।

संकिस्स अथवा संकिस बौद्धों का तीर्थ स्थान है। यहाँ अशोक ने स्तम्भ बनवाया था। फाहियान और हुएन-सांग यहाँ आये थे। जैन कवि धनपाल की यह जन्मभूमि थी। यह स्थान आजकल इसी नाम से प्रसिद्ध है और काली नदी पर बसा है। यहाँ बहुत से सिक्के और ध्वंसावशेष मिले हैं।

कुशार्त की गणना जैनों के साढ़े पच्चीस आर्य देशों में की गई है। जैन

ग्रन्थों में कहा गया है कि राजा शौरि ने अपने लघु भ्राता सुवीर को मथुरा का राज्य सौंपकर कुशार्त देश में जाकर शौरिपुर नगर बसाया। पश्चिम के कुशार्त नगर से यह भिन्न है।

शौरिपुर या सूर्यपुर कुशार्त की राजधानी थी। जैन परम्परा के अनुसार यह नगर कृष्ण और उनके चचेरे भाई नेमिनाथ की जन्मभूमि थी।

शौरिपुर यमुना के किनारे बसा था। इसकी पहचान आगरा ज़िले के सूर्यपुर नामक स्थान से की जाती है। यह स्थान यमुना के दाहिने किनारे बटेसर के पास है। श्वेताम्बर आचार्य हीरविजय सूरि के आगमन के समय इस तीर्थ का जीर्णोद्धार किया गया था। बटेसर मे बहुत-से शिव-मन्दिर बने हैं और यहाँ कार्तिक महीने में बड़ा मेला लगता है जिसमे बहुत से घोडे, ऊँट आदि बिकने आते हैं।

प्राचीन ग्रन्थो मे **शूरसेन** का उल्लेख आता है। ब्राह्मण ग्रन्थो के अनुसार इसे राम के छोटे भाई शत्रुघ्न ने बसाया था। यहाँ की भाषा शौरसेनी कही जाती थी। मथुरा के आसपास का प्रदेश शूरसेन कहा जाता है।

शूरसेन की राजधानी मथुरा थी। उत्तरापथ का यह महत्त्वपूर्ण नगर था। महाभारत के अनुसार मथुरा यादवों की भूमि थी। कंसवध के पश्चात् जरासंध के भय से यादव लोग मथुरा छोड़कर पश्चिम की ओर चले गये और वहाँ उन्होंने द्वारका नगरी बसाई।

बृहत्कल्पभाष्य मे कहा गया है कि मथुरा के अन्तर्गत ९६ गाँवो के रहने वाले लोग अपने घरों और चौराहों पर जिन भगवान् की प्रतिमा स्थापित करते थे। यहाँ एक सोने का स्तूप था, जिस पर जैन और बौद्धों मे झगड़ा हुआ था। कहते हैं कि अन्त मे इस स्तूप पर जैनो का अधिकार हो गया। रविषेण के बृहत्कथाकोश तथा सोमदेव सूरि के यशस्तिलक चम्पू मे इसे देवनिर्मित स्तूप कहा गया है। राजमल्ल के जम्बूस्वामी चरित मे मथुरा मे ५०० स्तूपों का उल्लेख है, जिनका उद्धार अकबर बादशाह के समकालीन साहू टोडर द्वारा किया गया था। मथुरा का प्राचीन स्तूप आजकल कंकाली टीले के रूप मे मौजूद है, जिसकी खुदाई से पुरातत्त्व संबंधी अनेक महत्त्वपूर्ण बातो का पता लगा है।

मथुरा मे अन्तिम केवली जम्बूस्वामी का निर्वाण हुआ था, अतएव इसकी गणना सिद्धक्षेत्रो में की गई है। ईसवी सन् की चौथी शताब्दि में जैन आगमो की संकलना के लिए यहाँ जैन श्रमणों का सम्मेलन हुआ था। आर्यमगु और आर्यरक्षित ने इस नगरी में विहार किया था।

बौद्ध ग्रन्थों में मथुरा मे पाँच दोष बताये गये हैं :—भूमि की विषमता, धूल का आधिक्य, कुत्तो का उपद्रव, यक्षों का उपद्रव और भिक्षा की दुर्लभता। कहते हैं कि एक बार बुद्ध भगवान् नगर मे प्रवेश करना चाहते थे, परन्तु यक्षिणी के उपद्रव के कारण वापिस लौट गये। लेकिन मालूम होता है कि फाहियान और हुअन-साग के समय मथुरा में बौद्ध धर्म का ज़ोर था, और उस समय यहाँ अनेक सघाराम और स्तूप बने हुए थे, तथा यहाँ का राजा और उसके मन्त्री बौद्ध धर्म के अनुयायी थे।

प्राचीन काल से ही मथुरा अनेक साधु-सन्तो का केन्द्र रहा है, इसलिये इसे पाखडिगर्भ कहा गया है। मथुरा भडीर (वट वृक्ष) यक्ष की यात्रा के लिए प्रसिद्ध था। इस यात्रा मे अनेक नर-नारी सम्मलित होते थे। विविध-तीर्थकल्प मे मथुरा मे १२ वनो का उल्लेख आता है।

मथुरा व्यापार का बड़ा केन्द्र था, यहाँ कपडा बहुत अच्छा बनता था। यहाँ के लोग खेती-बारी नहीं करते थे, उनकी आजीविका का मुख्य साधन व्यापार था। राजा कनिष्क के समय मथुरा से श्रावस्ति, बनारस आदि नगरो को मूर्तियाँ भेजी जाती थी।

मथुरा आजकल वैष्णवो का परम धाम माना जाता है। यहीं पास मे वृन्दावन है। मथुरा के आसपास चौरासी कोस का घेरा व्रजमडल कहा जाता है।

मथुरा की पहचान मथुरा से दक्षिण-पश्चिम मे महोलि नामक ग्राम से की जाती है। मथुरा मे चौरासी नामक स्थान पर दिगम्बर जैन मन्दिर बना हुआ है।

मथुरा से ऊपर की ओर अच्छा जनपद था। इसकी राजधानी का नाम वरणा था। वारण गण और उच्चानागरी शाखा का उल्लेख कल्पसूत्र मे आता है, इससे मालूम होता है, यह प्रदेश जैन श्रमणो का केन्द्र था।

वरणा की पहचान बुलन्दशहर से की जाती है जो उच्चानगर का ही

भाषांतर है। आजकल भी यह वारन नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ प्राचीन सिक्के उपलब्ध हुए हैं।

कुरु या कुरुजांगल का महाभारत में अनेक जगह उल्लेख आता है। यहाँ के लोग बहुत बुद्धिमान् और स्वस्थ माने जाते थे। भगवान् बुद्ध का उपदेश सुनकर यहाँ बहुत-से लोग उनके अनुयायी बने थे।

कुरुक्षेत्र या स्थानेश्वर के इर्दगिर्द के प्रदेश को कुरुदेश माना जाता है।

जातक ग्रन्थों के अनुसार कुरुदेश की राजधानी इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) थी, और यह यमुना के किनारे बसी हुई थी। राजा युधिष्ठिर की यह मुख्य नगरी थी।

जैन सूत्रों के अनुसार कुरु की राजधानी हस्तिनापुर थी। हस्तिनापुर का दूसरा नाम नागपुर था। वसुदेवहिण्डी में इसे ब्रह्मस्थल नाम से कहा गया है। यह स्थान जैन तीर्थंकर, चक्रवर्ती तथा पांडवों की जन्मभूमि माना जाता है। इस नगर की गणना अतिशय क्षेत्रों में की गई है। हस्तिनापुर में महावीर द्वारा शिवराजा को दीक्षा दिये जाने का उल्लेख जैन सूत्रों में मिलता है।

आजकल यह नगर उजाड़ पड़ा है। जङ्गल में जैन नशियाँ बनी हुई हैं, जहाँ तीर्थंकरों की चरण-पादुकाएँ हैं। यह स्थान मेरठ जिले में मवाने के पास इसी नाम से प्रसिद्ध है। आजकल यहाँ खुदाई चल रही है। इसके आसपास खादर है, सरकार इसे खेती करने योग्य बनाने का उद्योग कर रही है।

६

पंजाब-सिन्ध-काठियावाड़-गुजरात-राजपूताना-मालवा-बुन्देलखंड

१ : पंजाब-सिन्ध

मालूम होता है कि निर्दोष खान-पान की सुविधा न होने के कारण पंजाब और सिन्ध में जैनधर्म का इतना प्रचार नहीं हो सका जितना अन्य प्रदेशों में हुआ। सिन्धु देश के विषय में छेदसूत्रों में कहा है कि यदि दुष्काल विरुद्ध राज्यातिक्रम या अन्य किसी अपरिहार्य आपत्ति के कारण वहाँ जाना पड़े तो यथाशीघ्र वहाँ से लौट आना चाहिये। क्योंकि वहाँ भक्ष्याभक्ष्य का विचार नहीं, लोग मांस और मद्य का सेवन करते हैं, तथा पाखण्डी साधु और साध्वी वहाँ निवास करते हैं।

प्राचीन जैन ग्रन्थों में **गंधार** का उल्लेख आता है। बौद्ध सूत्रों में गंधार को उत्तरापथ का प्रथम जनपद बताया गया है।

तक्षशिला और पुष्करावती गंधार देश की क्रम से पूर्वी और पश्चिमी राजधानियाँ थीं। जातक ग्रन्थों के अनुसार तक्षशिला समूचे भारत का विद्याकेन्द्र था, और यहाँ लाट, कुरु, मगध, शिवि आदि दूर-दूर देशों के विद्यार्थी पढ़ने आते थे। प्रसिद्ध वैयाकरणी पाणिनी और प्रख्यात वैद्यराज जीवक ने यहाँ विद्याभ्यास किया था।

जैन ग्रन्थों में तक्षशिला को बहली देश की राजधानी बताया गया है। जैन परम्परा के अनुसार, ऋषभदेव ने अयोध्या का राज्य भरत को और बहली का राज्य बाहुबलि को सौंपकर दीक्षा ग्रहण की थी। बाद में चलकर भरत और बाहुबलि दोनों में युद्ध हुआ और बाहुबलि ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली।

भाषांतर है। आजकल भी यह बारन नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ प्राचीन सिक्के उपलब्ध हुए हैं।

कुरु या कुरुजांगल का महाभारत में अनेक जगह उल्लेख आता है। यहाँ के लोग बहुत बुद्धिमान् और स्वस्थ माने जाते थे। भगवान् बुद्ध का उपदेश सुनकर यहाँ बहुत-से लोग उनके अनुयायी बने थे।

कुरुक्षेत्र या स्थानेश्वर के इर्दगिर्द के प्रदेश को कुरुदेश माना जाता है।

जातक ग्रन्थों के अनुसार कुरुदेश की राजधानी इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) थी, और यह यमुना के किनारे बसी हुई थी। राजा युधिष्ठिर की यह मुख्य नगरी थी।

जैन सूत्रों के अनुसार कुरु की राजधानी हस्तिनापुर थी। हस्तिनापुर का दूसरा नाम नागपुर था। वसुदेवहिण्डी में इसे ब्रह्मस्थल नाम से कहा गया है। यह स्थान जैन तीर्थंकर, चक्रवर्ती तथा पाडवों की जन्मभूमि माना जाता है। इस नगर की गणना अतिशय क्षेत्रों में की गई है। हस्तिनापुर में महावीर द्वारा शिवराजा को दीक्षा दिये जाने का उल्लेख जैन सूत्रों में मिलता है।

आजकल यह नगर उजाड़ पड़ा है। जङ्गल में जैन नशियाँ बनी हुई हैं, जहाँ तीर्थंकरों की चरण-पादुकाएँ हैं। यह स्थान मेरठ जिले में मवाने के पास इसी नाम से प्रसिद्ध है। आजकल यहाँ खुदाई चल रही है। इसके आसपास खादर है, सरकार इसे खेती करने योग्य बनाने का उद्योग कर रही है।

६

पंजाब-सिन्ध-काठियावाड़-गुजरात-राजपूताना-मालवा-बुन्देलखंड

१ : पंजाब-सिन्ध

मालूम होता है कि निर्दोष खान-पान की सुविधा न होने के कारण पंजाब और सिन्ध में जैनधर्म का इतना प्रचार नहीं हो सका जितना अन्य प्रदेशों में हुआ। सिन्धु देश के विषय में छेदसूत्रों में कहा है कि यदि दुष्काल विरुद्ध राज्यातिक्रम या अन्य किसी अपरिहार्य आपत्ति के कारण वहाँ जाना पड़े तो यथाशीघ्र वहाँ से लौट आना चाहिये। क्योंकि वहाँ भक्ष्याभक्ष्य का विचार नहीं, लोग मांस और मद्य का सेवन करते हैं, तथा पाखण्डी साधु और साध्वी वहाँ निवास करते है।

प्राचीन जैन ग्रन्थों में **गंधार** का उल्लेख आता है। बौद्ध सूत्रों में गंधार को उत्तरापथ का प्रथम जनपद बताया गया है।

तक्षशिला और पुष्करावती गंधार देश की क्रम से पूर्वी और पश्चिमी राजधानियाँ थीं। जातक ग्रन्थों के अनुसार तक्षशिला समूचे भारत का विद्याकेन्द्र था, और यहाँ लाट, कुरु, मगध, शिवि आदि दूर-दूर देशों के विद्यार्थी पढ़ने आते थे। प्रसिद्ध वैयाकरणी पाणिनी और प्रख्यात वैद्यराज जीवक ने यहाँ विद्याभ्यास किया था।

जैन ग्रन्थों में तक्षशिला को बहली देश की राजधानी बताया गया है। जैन परम्परा के अनुसार, ऋषभदेव ने अयोध्या का राज्य भरत को और बहली का राज्य बाहुबलि को सौंपकर दीक्षा ग्रहण की थी। बाद में चलकर भरत और बाहुबलि दोनों में युद्ध हुआ और बाहुबलि ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली।

तक्षशिला का दूसरा नाम धर्मचक्रभूमिका था। यह नगरी बहुत समृद्ध थी, तथा यहाँ राजा अशोक अपने पुत्र कुणाल के साथ रहता था।

तक्षशिला की खुदाई में अनेक सिक्के, ताम्रपत्र तथा स्तूपों और विहारों के ध्वंसावशेष उपलब्ध हुए हैं। तक्षशिला की पहचान पाकिस्तान मे रावलपिंडी जिले के शाहजी की ढेरी नामक स्थान मे की जाती है।

साकेत के पश्चिम मे थूणा (स्थाणुतीर्थ) जैन श्रमणों के विहार की सीमा थी। इस नगर का सबध पाण्डवों के इतिहास से है। हुअन-साग के समय यहाँ अनेक बौद्ध स्तूप बने हुए थे।

स्थानेश्वर की पहचान सरस्वती और घाघरा के बीच कुरुक्षेत्र से की जाती है। मथुरा के थूणा से यह भिन्न है।

रोहीतक का उल्लेख महाभारत और दिव्यावदान मे आता है। प्राचीन समय में रोहीतक समृद्धिशाली नगर था।

इसकी पहचान आधुनिक रोहतक से की जाती है।

अभयदेव के अनुसार सौवीर (सिन्ध) सिन्धु नदी के पास होने के कारण **सिन्धु-सौवीर** कहा जाता था, यद्यपि बौद्ध ग्रन्थों में सिन्धु और सौवीर को अलग-अलग प्रदेश मानकर रोरुक को सौवीर की राजधानी बताया है। सिन्धु देश की नदियों में बाढ बहुत आती थी। दिगम्बर परम्परा के अनुसार रामिल्ल, स्थूलभद्र और भद्राचार्य ने उज्जयिनी मे दुष्काल पडने पर सिंधु देश मे विहार किया था।

जैन ग्रन्थों मे सिन्धु-सौवीर की राजधानी का नाम वीतिभय पट्टन बताया गया है। इस नगर का दूसरा नाम कुंभारप्रक्षेप था। कहते हैं कि एक बार महर्षि उदयन किसी कुम्हार के घर ठहरे हुए थे। वहाँ उनके भानजे ने उन्हे विष दे दिया जिससे उनकी मृत्यु हो गई। इस पर देवताओं ने कुम्हार के घर को छोड़कर नगर में सर्वत्र धूल की घोर वर्षा की, अतएव इस नगर का नाम कुंभारप्रक्षेप पड़ा। महावीर द्वारा उदयन को दीक्षा दिये जाने का उल्लेख जैन ग्रन्थों में आता है। इस नगर में महावीर की चन्दन-निर्मित प्रतिमा थी,

जिसके दर्शन के लिये लोग दूर-दूर से आते थे। फाहियान के समय यहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार था।

वीतिभयपट्टन सिणवल्लि के अन्तर्गत था। सिणवल्लि एक बड़ा विकट रेगिस्तान था, जहाँ क्षुधा-तृषा से पीड़ित यात्री लोगों को अक्सर प्राणों से हाथ धोना पड़ता था। संभवतः पाकिस्तान में मुजफ्फरगढ़ जिले के सनावन या सिनावन के आसपास का प्रदेश सिणवल्लि कहा जाता हो।

वीतिभय की पहचान पाकिस्तान में शाहपुर जिले के भेरा नामक स्थान से की जा सकती है। इसका पुराना नाम भद्रवती बताया जाता है। यहाँ विजिभ नामक गाँव के पास बहुत से खंडहर पाये गये हैं, जिनसे पता लगता है कि प्राचीन काल में यह स्थान बहुत उन्नत दशा में था।

२. काठियावाड़

मालूम होता है कि गुजरात और काठियावाड़ में शनैः-शनैः जैन धर्म का प्रसार हुआ। जैन ग्रन्थों में सौराष्ट्र (काठियावाड़) का उल्लेख महाराष्ट्र, द्राविड़, आन्ध्र और कुडुक्क (कुर्ग) देशों के साथ किया गया है, जहाँ परम धार्मिक सम्प्रति राजा ने अपने भटों को भेजकर जैन धर्म का प्रचार किया। आगे चलकर राजा कुमारपाल के समय गुजरात में जैनधर्म काफी फूला फला।

सौराष्ट्र की गणना जैनों के साढ़े पच्चीस आर्य देशों में की गई है। जैन ग्रन्थों के अनुसार यहाँ कालकाचार्य ईरान के ९६ शाहों को लेकर आये थे। सौराष्ट्र व्यापार का बड़ा केन्द्र था।

द्वारवती सौराष्ट्र की मुख्य नगरी थी। इसका दूसरा नाम कुशस्थली था। द्वारका का वर्णन जैन सूत्रों में आता है। पहले कहा जा चुका है कि जरासंध के भय से यादव लोग मथुरा छोड़कर यहाँ आ बसे थे। जैन ग्रन्थों में द्वारका को आनर्त, कुशार्त, सौराष्ट्र और शुष्कराष्ट्र की राजधानी कहा है। द्वीपायन ऋषि द्वारा द्वारका के विनाश होने का उल्लेख ब्राह्मण और जैन ग्रन्थों में मिलता है। यहाँ कादंबरी नाम की एक गुफा थी। उत्तर की द्वारका से यह भिन्न है।

कुछ लोग जूनागढ़ को ही प्राचीन द्वारका मानते हैं। आजकल यह स्थान वैष्णवों का परम धाम माना जाता है।

द्वारका* के उत्तर-पूर्व में रैवतक पर्वत था। इसका दूसरा नाम ऊर्जयन्त था। यहां नन्दनवन नाम का वन था, जिसमें सुरप्रिय यक्ष का सुन्दर मंदिर था। यह पर्वत अनेक पक्षी, लताओं आदि से शोभित था। यहाँ पानी के झरने थे, और लोग प्रतिवर्ष उत्सव (संखडि) मनाने के लिए एकत्रित होते थे।

रैवतक पर्वत पर भगवान् अरिष्टनेमि ने मुक्तिलाभ किया, इसकी गणना सिद्धक्षेत्रों में की जाती है। यहाँ गुजरात के प्रसिद्ध जैन मन्त्री तेजपाल के बनवाए हुए अनेक मन्दिर हैं। राजीमती (राजुल) ने यहाँ तप किया था, उसकी यहाँ गुफा बनी हुई है। दिगम्बर परम्परा के अनुसार, यहाँ चन्द्रगुफा में आचार्य धरसेन ने तप किया था, और यहीं पर भूतबलि और पुष्पदन्त आचार्यों को अवशिष्ट श्रुतज्ञान को लिपिबद्ध करने का आदेश किया गया था। वैभार पर्वत के समान रैवतक भी क्रीडा का स्थल था।

रैवतक के इर्द-गिर्द का प्रदेश गिरिनगर या गिरिनार के नाम से पुकारा जाता था। रैवतक की पहचान जूनागढ के पास गिरनार से की जाती है।

प्रभास क्षेत्र को महाभारत में सर्वप्रधान तीर्थों में गिना है। इसे चन्द्र-प्रभास, देवपाटन अथवा देवपट्टन भी कहते हैं। ब्राह्मणों का यह पवित्र धाम माना जाता है। चन्द्रग्रहण के समय यहाँ अनेक यात्री आते हैं। आवश्यक चूर्णि में प्रभास को जैन तीर्थ माना गया है।

प्रभास की पहचान आधुनिक सोमनाथ से की जाती है।

शत्रुंजय जैन तीर्थों में आदितीर्थ माना जाता है। इसका दूसरा नाम पुण्डरीक है। जैन मान्यता के अनुसार यहाँ पञ्च पाण्डव तथा अन्य अनेक ऋषि-मुनियों ने मुक्तिलाभ किया। राजा कुमारपाल के राज्य में लाखों रुपये लगाकर यहाँ के मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया गया था। यहाँ पर छोटे-मोटे हजारों मन्दिर बने हुए हैं। इन मन्दिरों में कुछ ग्यारहवीं शताब्दि के हैं, बाकी ईसवी सन १५०० के बाद के बने हुए हैं।

* पटना के दीवान बहादुर राधाकृष्ण जालान के संग्रह में एक जैन स्तूप सुरक्षित है जो संगमरमर का बना है और द्वारका से लाया गया है।

यह स्थान काठियावाड में पालिताना स्टेशन से दो मील के फासले पर है। यहाँ जैन यात्रियों के ठहरने के लिए आलीशान धर्मशालाएँ बनी हुई हैं।

वलभी प्राचीन काल में सौराष्ट्र की राजधानी थी। ईसवी सन की छठी शताब्दि में यहाँ देवर्धिगणि क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में जैन आगमों की सङ्कलना के लिये अन्तिम सम्मेलन हुआ था। देवर्धिगणि की यहाँ मूर्ति स्थापित है।

हुअन-सांग के समय यहाँ अनेक बौद्ध विहार मौजूद थे। नालन्दा के समान वलभी भी बौद्ध विद्या का केन्द्र था। यहाँ अनेक प्राचीन सिक्के और ताम्रपत्र उपलब्ध हुए हैं।

वलभी की पहचान भावनगर से उत्तर-पूर्व में १८ मील पर वला नामक स्थान से की जाती है।

हत्थकप्प नगर का उल्लेख जैन सूत्रों में आता है। पञ्च पाण्डवों का यहाँ आगमन हुआ था। पाण्डवचरित के अनुसार, यह नगर रैवतक पर्वत से बारह योजन की दूरी पर था। शिलालेखों में हस्तकवप्र का उल्लेख आता है।

इस नगर की पहचान भावनगर रियासत के हाथब नामक स्थान से की जाती है।

महुवा बन्दर भावनगर रियासत में है। इसका दूसरा नाम मधुमती था। पार्श्वनाथ का यह अतिशय क्षेत्र माना जाता है।

३ गुजरात

जैन और बौद्ध ग्रन्थों में **लाट** देश का उल्लेख आता है, यद्यपि इसकी गणना पृथक् रूप से आर्य देशों में नहीं की गई। वर्षाऋतु में यहाँ गिरियज्ञ नामक उत्सव, तथा श्रावण सुदी पूर्णिमा के दिन इन्द्र का उत्सव मनाया जाता था। इस देश में वर्षा से खेती होती थी, और यहाँ खार पानी के कुँए थे।

भृगुकच्छ लाट की राजधानी थी। यह नगर भृगुपुर नाम से भी प्रसिद्ध था। बौद्ध जातकों में भृगुकच्छ का उल्लेख आता है। यहाँ कुण्डलमेण्ठ नामक व्यंतर देव की स्मृति में उत्सव मनाया जाता था। भूततडाग नाम का यहाँ बड़ा तालाब था। आचार्य वज्रभूति ने भृगुकच्छ में विहार किया था। भृगुकच्छ और उज्जैनी के बीच पच्चीस योजन का अन्तर था।

भृगुकच्छ व्यापार का बड़ा केन्द्र था। यहाँ जल और स्थल दोनों मार्गों से व्यापार होता था। ईसवी सन की प्रथम शताब्दि में यहाँ काबुल से माल आता था।

भृगुकच्छ की पहचान आधुनिक भड़ौच से की जाती है। आजकल यह मुनिसुव्रतनाथ का तीर्थ माना जाता है। अश्वावबोध नामक तीर्थ यहाँ से लगभग छह कोस है।

आनन्दपुर का पुराना नाम आनर्तपुर है। इसे नगर भी कहा जाता था। राजा ध्रुवसेन द्वितीय की यह राजधानी थी। जैन परम्परा के अनुसार यहाँ सर्वप्रथम कल्पसूत्र की वाचना हुई थी। आनन्दपुर ब्राह्मणों का केन्द्र था। जैन श्रमण यहाँ से मथुरा के लिए विहार करते थे।

आनन्दपुर व्यापार का बड़ा केन्द्र था। यहाँ स्थल मार्ग से माल आता-जाता था। यहाँ के निवासी सरस्वती नदी के किनारे उत्सव मनाते थे।

आनन्दपुर की पहचान उत्तर गुजरात के वडनगर स्थान से की जाती है।

मोढेरा का उल्लेख सूत्रकृतांग चूर्णि में आता है। यहाँ सिद्धसेन आचार्य ने विहार किया था। प्राचीन शिलालेखों में इस नगरी का नाम आता है। मोढ वणिकों की उत्पत्ति का यह स्थान है। हेमचन्द्राचार्य मोढ जाति में ही उत्पन्न हुए थे।

यह स्थान पाटन से लगभग १८ मील की दूरी पर है। यहाँ सूर्य का मन्दिर है।

तारङ्गागिरि से वरदत्त, सागरदत्त, वरदत्त आदि साढे तीन करोड़ मुनियों के मोक्ष जाने का उल्लेख जैन ग्रन्थों में आता है। यहाँ सिद्धशिला नाम की पहाडी है। पहाड के ऊपर आचार्य हेमचन्द्र के उपदेश से सम्राट कुमारपाल

द्वारा प्रतिष्ठित विशाल मन्दिर है जिसके निर्माण में लाखों रुपये लगे थे। प्रभावकचरित में इस तीर्थ की उत्पत्ति दी हुई है।

महेसाणा से तारंगा हिल को रेल जाती है। तारंगा हिल स्टेशन से तीन चार मील के फासले पर है।

पावागिरि सिद्धक्षेत्रों में गिना जाता है। यहाँ से रामचन्द्र जी के पुत्र लव और कुश आदि पाँच करोड़ मुनियों के मोक्ष जाने का उल्लेख मिलता है। यह तीर्थ शत्रुंजय की जोड़ का माना जाता है। पावकगढ़ का उल्लेख शिलालेखों में पाया जाता है। यह स्थान तोमरवंशी राजाओं के अधिकार में था।

यहाँ लाखों रुपये की लागत के दिगम्बर जैन मन्दिर बने हुए हैं। पहले यह तीर्थ श्वेताम्बरों का था। यहाँ सुप्रसिद्ध मन्त्री तेजपाल ने सर्वतोभद्र नाम का विशाल मन्दिर बनवाया था। माघ सुदी १३ से यहाँ तीन दिन तक मेला भरता है।

यह स्थान बड़ौदा से अट्ठाईस मील के फासले पर चाँपानेर के पास है।

स्तंभन तीर्थ की कथा सोमधर्मगणि की उपदेशसप्ततिका में आती है। चिन्तामणि पार्श्वनाथ का यहाँ प्रसिद्ध मन्दिर है। यहाँ अभयदेव सूरि ने विहार किया था।

स्तंभन तीर्थ की पहचान आधुनिक खंभात से की जाती है।

४ : राजपूताना

राजपूताने को मरुभूमि कहा जाता था। यहाँ शनैः-शनैः जैन धर्म का प्रसार हुआ।

मत्स्य देश का उल्लेख महाभारत में आता है। इस देश की गणना जैनों के साढ़े पच्चीस आर्य देशों में की गई है।

मत्स्य देश की पहचान आधुनिक अलवर रियासत से की जाती है।

वैराट या विराटनगर मत्स्य की राजधानी थी। वनवास के समय यहाँ पाण्डवों ने गुप्त वास किया था। यहाँ अशोक के शिलालेख पाये गये हैं। चीनी

यात्री हुअन-सांग यहाँ आया था। वैराट में बौद्ध मठों के ध्वंसावशेष उपलब्ध हुए हैं।

यहाँ के लोग वीरता के लिए प्रसिद्ध थे। आइने-अकबरी में वैराट का उल्लेख आता है। अकबर बादशाह ने इस नगर को फिर से बसाया था। यहाँ ताँबे की बहुत सी खाने थीं।

वैराट की पहचान जयपुर रियासत के वैराट नामक स्थान से की जाती है।

राजपूताने का दूसरा प्राचीन स्थान पुष्कर था। आवश्यक चूर्णि में इसको तीर्थक्षेत्र बताया है। उज्जयिनी के राजा चण्डप्रद्योत के समय यह स्थान विद्यमान था।

यहाँ पुष्कर तालाब में स्नान करने के लिये आजकल भी अनेक यात्री आते हैं। यहाँ अनेक उत्तम घाट, धर्मशालाएँ और मन्दिर बने हुए हैं।

पुष्कर अजमेर से लगभग ६ मील की दूरी पर है।

भिल्लमाल या श्रीमाल में आचार्य वज्रस्वामी ने विहार किया था। यहाँ द्रम्म नाम का चाँदी का सिक्का चलता था। छठी शताब्दि से लेकर नौवीं शताब्दि तक यह स्थान श्रीमाल गुर्जरों की राजधानी थी। श्रीमाल उपमिति-भवप्रपञ्चकथा के कर्ता सिद्धर्षि और माघ कवि की जन्मभूमि थी।

भिल्लमाल की पहचान जोधपुर रियासत में जसवन्तपुर के पास भिनमाल नामक स्थान से की जाती है।

अर्बुद जैनों का प्राचीन तीर्थ है। यहाँ ऋषभनाथ और नेमिनाथ के विश्व-विख्यात मन्दिर हैं, जिन्हें लाखों रुपये खर्च करके बनवाया गया था। इनमें से एक १०३२ ई० में विमलशाह का बनवाया हुआ है और दूसरा १२३२ ई० में तेजपाल का बनवाया हुआ है। दोनों ही शिखर तक सगमरमर के बने हैं। जिनप्रभसूरि के समय यहाँ श्रीमाता, अचलेश्वर, वशिष्ठाश्रम आदि अनेक लौकिक तीर्थ विद्यमान थे। बृहत्कल्पभाष्य में अर्बुद और प्रभास तीर्थों पर उत्सव (सखडि) मनाये जाने का उल्लेख आता है।

अर्बुद की पहचान सिरोही राज्य के अन्तर्गत आबू पहाड़ से की जाती है।

इसकी गणना शत्रुंजय, सम्मेदशिखर गिरनार और चन्द्रगिरि नामक तीर्थों के साथ की गई है।

माध्यमिका (मज्झमिया) नाम की जैन श्रमणों की शाखा का उल्लेख कल्पसूत्र में मिलता है। यहाँ प्राचीन शिलालेख, सिक्के एव बौद्ध स्तूपों के अवशेष उपलब्ध हुए हैं।

माध्यमिका की पहचान दक्षिण राजपूताने में चित्तौड़ के पास नगरी नामक स्थान से की जाती है।

उदयपुर में धुलेवा जी अथवा केसरियाजी जैन तीर्थ माना जाता है। यहाँ फाल्गुन बदी ८ को बड़ा मेला लगता है, और भगवान पर मनों केसर चढ़ाई जाती है। भील आदि जातियाँ भी इस तीर्थ को पूजती हैं।

बिजोलिया उदयपुर से लगभग ११२ मील है। इसका पुराना नाम विन्ध्यावलि था। यहाँ पार्श्वनाथ का मन्दिर है।

जोधपुर से मेड़ता रोड लाइन पर मेड़ता रोड स्टेशन के पास फलोधी नाम का तीर्थ है। इस तीर्थ की कथा उपदेशसप्ततिका में आती है। यहाँ आचार्य देवसूरि का आगमन हुआ था। यहाँ पार्श्वनाथ की अढ़ाई हाथ लम्बी मूर्ति है।

विक्रम की १३-१६ शताब्दि में राणकपुर एक उन्नत और महान नगर था। यहाँ धनाशा और रत्नाशा नाम के दो भाइयों ने लाखों रुपया खर्च करके मन्दिरों का निर्माण किया था। मेवाड़ के महाराणा कुम्भा राणा के समय विक्रम संवत् १४३४ में इस तीर्थ के निर्माण का कार्य जारी था। आज कल यह तीर्थ मारवाड़ और मेवाड़ की संधि पर विद्यमान है।

५ · मालवा

मालव की गणना प्राचीन जनपदों में की गई है। यह देश जैन श्रमणों का केन्द्र था, और अवन्तिपति राजा सम्प्रति ने यहाँ जैन धर्म की प्रभावना

की थी। यहाँ के बोधिकों का उल्लेख महाभारत तथा जैन ग्रन्थों में आता है। ये लोग उज्जयिनी निवासियों को भगाकर ले जाते थे। चीनी यात्री हुअन-सांग के समय मालवा विद्या का केन्द्र था और यहाँ अनेक मठ बने हुए थे।

अवन्ति मालवा की राजधानी थी। यह दक्षिणापथ की मुख्य नगरी थी। अवन्ति का उल्लेख बौद्ध सूत्रों में आता है। ईसवी सन की सातवीं-आठवीं सदी के पहले मालव अवन्ति के नाम से प्रख्यात था। यहाँ की मिट्टी काली होती थी, अतएव यहाँ बौद्ध साधुओं को जूते पहनने और स्नान करने की अनुमति प्राप्त थी।

अवन्ति की पहचान मालवा, निमाड़ और मध्यप्रदेश के कुछ हिस्सों से की जाती है।

अवन्ति के पूर्व में उससे सटा हुआ आकर देश था। आकर की राजधानी विदिशा थी। आगे चलकर अवन्ति और आकर क्रम से पश्चिमी और पूर्वी मालवा कहलाने लगे।

उज्जयिनी उत्तर अवन्ति की राजधानी थी। राजा चण्डप्रद्योत यहाँ राज्य करता था। कुछ समय पश्चात सम्राट् अशोक का पुत्र कुणाल यहाँ का सूबेदार हुआ। उज्जयिनी का दूसरा नाम कुणालनगर बताया गया है। कुणाल के बाद राजा सम्प्रति का राज्य हुआ। यहाँ जीवन्तस्वामी प्रतिमा के दर्शन के लिये आर्य सुहस्ति का आगमन हुआ था। यहाँ आचार्य चंडरुद्र, भद्रकगुप्त, आर्यरक्षित, आर्यआषाढ आदि मुनियों ने भी विहार किया था। दिगम्बर जैन परम्परा के अनुसार चन्द्रगुप्त सम्राट् ने यहाँ भद्रबाहु से दीक्षा ग्रहण कर दक्षिण की यात्रा की थी। श्वेताम्बर जैन परम्परा के अनुसार यहाँ कालकाचार्य ने राजा गर्दभिल्ल को सिंहासन से उतार कर उसके स्थान पर ईरान के शाहों को बैठाया था। बाद में राजा विक्रमादित्य ने अपना राज्य स्थापित किया। सिद्धसेन दिवाकर विक्रमादित्य की सभा के एक रत्न माने जाते थे।

उज्जयिनी विशाला और पुष्पकरण्डिनी नाम से भी प्रख्यात थी। किसी समय यहाँ बौद्धों का जोर था और यहाँ अनेक बौद्ध मठ बने हुए थे। यहाँ

के लोग मद्यपान के शौकीन होते थे। उज्जयिनी व्यापार का बड़ा केन्द्र था।

उज्जयिनी में महाकाल नाम का प्राचीन मन्दिर था, जिसका उल्लेख कालिदास ने मेघदूत में किया है। यह मन्दिर आजकल महाकालेश्वर के नाम से प्रख्यात है।

दक्षिण अवन्ति की राजधानी माहिष्मती थी। किसी समय यह बहुत समृद्धावस्था में थी। बौद्ध ग्रन्थों में इसे महेश्वरपुर कहा गया है।

माहिष्मती की पहचान नर्मदा के दाहिने किनारे पर महिष्मति अथवा महेश नामक स्थान से की जाती है। यह स्थान इन्दौर से पैंतालीस मील की दूरी पर है।

दशार्ण का नाम जैन आर्य क्षेत्रों में आता है। दशार्ण का उल्लेख महाभारत और मेघदूत में भी मिलता है। यहाँ की तलवारें बहुत अच्छी होती थीं।

भिलसा के आसपास के प्रदेश को दशार्ण माना जाता है।

मृत्तिकावती दशार्ण की राजधानी थी। यह नगरी नर्मदा के किनारे थी। ब्राह्मणों की हरिवंश पुराण में इसका उल्लेख मिलता है।

मेघदूत में विदिशा को दशार्ण की राजधानी कहा गया है। यहाँ महावीर की चन्दन-निर्मित मूर्ति थी। आचार्य महागिरि तथा सुहस्ति ने यहाँ विहार किया था। भरहुत के शिलालेखों में विदिशा का उल्लेख मिलता है। यहाँ बहुत से पुराने स्तूपों के अवशेष उपलब्ध हुए हैं। विदिशा वेत्रवती (बेतवा) के किनारे पर थी, और यहाँ के वस्त्र बहुत अच्छे होते थे।

विदिशा की पहचान आधुनिक भिलसा से की जाती है।

दशार्णपुर दशार्ण का दूसरा प्रसिद्ध नगर था। जैन अनुश्रुति के अनुसार इसका दूसरा नाम एडकाक्षपुर था। बौद्ध ग्रन्थों में इसे एरकच्छ नाम से कहा गया है। यह नगर वत्थगा (बेतवा) नदी के किनारे था, और व्यापार का बड़ा केन्द्र था।

दशार्णपुर की पहचान झाँसी जिले के एरछ नामक स्थान से की जा सकती है।

दशार्णपुर के उत्तर-पूर्व में दशार्णकूट नाम का पर्वत था। इसका दूसरा नाम गजाग्रपद अथवा इन्द्रपद भी था। पर्वत चारों तरफ गाँवों से घिरा था। जैन सूत्रों के अनुसार यहाँ महावीर ने राजा दशार्णभद्र को दीक्षा दी थी। आचार्य महागिरि ने यहाँ तपश्चरण किया था। आवश्यक चूर्णि में दशार्ण-कूट का वर्णन आता है।

दशार्ण का दूसरा नगर दशपुर था। जैन श्रमणों ने इस नगर को अपने विहार से पवित्र किया था। आचार्य आर्यरक्षित की यह जन्मभूमि थी। दशपुर मे जीवन्तस्वामी प्रतिमा होने का उल्लेख आता है। यहाँ सातवे निह्नव की स्थापना हुई थी।

दशपुर की पहचान आधुनिक मदसौर से की जाती है।

विदिशा के पास कुजरावर्त और रथावर्त नाम के पर्वत थे; दोनों पास-पास थे। जैन परम्परा के अनुसार कुजरावर्त पर्वत पर आर्य वज्रस्वामी ने निर्वाण पाया था। इस पर्वत का उल्लेख रामायण मे आता है।

रथावर्त पर्वत पर आर्य वज्रस्वामी पाँच सौ श्रमणो के साथ आये थे। इस पर्वत का उल्लेख महाभारत मे आता है।

बडवानी दिगम्बरो का तीर्थ है। दिगम्बर परंपरा के अनुसार यहाँ से दक्षिण की ओर चूलगिरि शिखर से इन्द्रजीत, कुभकर्ण आदि मुनि मोक्ष पधारे। इसे बावनगजा भी कहते हैं।

यह स्थान मऊ स्टेशन से लगभग ६० मील की दूरी पर है।

मक्सी पार्श्वनाथ उज्जैन से बारह कोस है।

सिद्धवरकूट रेवा नदी के तट पर है। यहाँ से साढ़े तीन करोड मुनियो का मोक्ष जाना बताया जाता है। यहाँ हर वर्ष मेला भरता है।

यह स्थान बडवाह (इन्दौर) से छह मील की दूरी पर है। यह क्षेत्र काफी अर्वाचीन मालूम होता है।

इन्दौर के पास ऊन नामक स्थान को पावागिरि (द्वितीय) कहा जाता

है। कहते हैं यहाँ से सुवर्णभद्र आदि मुनि मोक्ष पधारे। यह तीर्थ भी अर्वाचीन मालूम होता है।

बुन्देलखण्ड

चेदि जनपद की गणना जैनों के आर्य क्षेत्रों मे की गई है। प्राचीन काल मे यहाँ राजा शिशुपाल राज्य करता था। चेदि बौद्ध श्रमणों का केन्द्र था।

बुन्देलखण्ड के उत्तरी भाग को प्राचीन चेदि माना जाता है।

शुक्तिमती चेदि देश की राजधानी थी। शुक्तिमती का उल्लेख महाभारत मे मिलता है। सुत्तिवइया नामक जैन श्रमणों की शाखा थी।

बाँदा जिले के इर्दगिर्द के प्रदेश को शुक्तिमती माना जाता है।

आरम्भ मे मध्यप्रदेश मे जैनधर्म का प्रचार बहुत कम था, लेकिन मालूम होता है आगे चल कर यहाँ बहुत से जैन तीर्थों का निर्माण हो गया।

बुन्देलखण्ड के द्रोणगिरि, नैनागिरि और सोनागिरि को सिद्धक्षेत्र माना जाता है।

बुन्देलखण्ड की बिजावर रियासत के सेंदपा गाँव के समीप का पर्वत द्रोणगिरि माना जाता है। यहाँ से गुरुदत्त आदि मुनियों का मोक्षगमन बताया है। यहाँ चौबीस मन्दिर हैं, वार्षिक मेला भरता है।

नैनागिरि क्षेत्र को रेसिन्दीगिरि बतलाया जाता है। कहते हैं यहाँ से वरदत्त आदि मुनियों ने मोक्ष लाभ किया। यह स्थान सागर जिले की ईशान सीमा के पास पन्ना रियासत मे है। यहाँ वार्षिक मेला लगता है।

सोनागिरि मे दो-चार को छोड कर शेष मन्दिर सौ सवा-सौ वर्ष के भीतर के जान पड़ते हैं। यह स्थान ग्वालियर के पास दतिया से पाँच मील है।

कुंडलपुर, खजराहा, थोबनजी, पपौरा, देवगढ, चन्देरी, अहारजी आदि अतिशय क्षेत्र माने जाते हैं।

कुण्डलपुर दमोह से बीस मील ईशान कोण मे है। मुख्य मन्दिर महावीर का है, और यहाँ महावीर जयन्ती का मेला भरता है।

किसी समय खजराहा बुन्देलखण्ड की राजधानी थी। शिलालेखों में इसका नाम खज्जूरवाहक आता है। हुअन-साँग ने इसका वर्णन किया है। यह नगर चन्देलवंश के राजाओं के समय चरमोन्नति पर था। यहाँ करोड़ों रुपये की लागत के जैन मन्दिर बने हुए हैं, जो ईसवी सन् ९५० से लेकर १०५० तक के हैं। खजराहा में अनेक खण्डित जैन मूर्त्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। यहाँ का मन्दिर-समूह इस काल की कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

देवगढ़ जाखलौन स्टेशन से लगभग आठ मील की दूरी पर है। यहाँ लाखों रुपये की लागत के जैन मन्दिर बने हुए हैं। यहाँ गुप्तकाल के लेख मौजूद हैं। यहाँ की शिल्पकला बहुत सुन्दर है। देवगढ़ को उत्तर भारत की जैनबद्री कहा जाता है।

चन्देरी ललितपुर से बीस मील दूर है। यहाँ अत्यन्त मनोज्ञ जैन मन्दिर बने हुए हैं।

थोवनजी चन्देरी से नौ मील के फासले पर है।

पपौराजी क्षेत्र टीकमगढ़ से तीन मील है।

अहारजी में सुन्दर जैन मूर्त्तियाँ हैं। यह स्थान टीकमगढ़ से पूर्व की ओर बारह मील है।

७

दक्षिण

बरार हैदराबाद-महाराष्ट्र-कोंकण-आन्ध्र-द्रविड-कर्णाटक-कुर्ग आदि

मध्यदेश मे जैसे-जैसे जैन श्रमणों ने दक्षिण की ओर विहार किया, दक्षिण मे शनैः-शनैः जैनधर्म का प्रसार होता गया। जैनों के साढे पच्चीस आर्य क्षेत्रों मे दक्षिण के देशों के नाम नहीं, इससे मालूम होता है कि आरम्भ मे दक्षिण मे जैनधर्म नही पहुँचा था। लेकिन धीरे-धीरे राजा सम्प्रति ने दक्षिणापथ को जीतकर उसके सामन्त राजाओं को अपने वश मे किया, और आगे चलकर आन्ध्र, द्रविड, कुडुक्क (कुर्ग) आदि देशों मे जैनधर्म फैलाया। परिणाम यह हुआ कि दक्षिण मे जैन उपासकों की सख्या बढने लगी, और यहाँ जैन श्रमणों का सन्मान होने लगा। आगे चलकर तो दक्षिण मे कुडुक्क आचार्य और गोल्ल आचार्य जैसे दिग्गज आचार्यों का तथा द्रविड सघ, पुन्नाट सघ आदि सघों का जन्म हुआ, एक से एक सुन्दर तीर्थों की स्थापना हुई, और दिगम्बर जैनों का यह केन्द्र बन गया।

१ : बरार

विदर्भ का उल्लेख महाभारत मे आता है। यहाँ राजा नल राज्य करता था।

यह देश आजकल दक्षिण कोशल, गोंडवाना या बरार के नाम से पुकारा जाता है।

कुण्डिननगर विदर्भ का मुख्य नगर था। इसका उल्लेख बृहदारण्यक उपनिषद् और महाभारत मे आता है।

यह स्थान आजकल अमरावती के चादूर तालुका मे है। यहाँ जैन मन्दिर है।

अचलपुर (एलिचपुर) विदर्भ देश का दूसरा मुख्य नगर था। इसके पास कृष्णा (कन्हन) और बेन्या (बेन) नदियाँ बहती थी। इन नदियो के बीच ब्रह्मद्वीप नाम का द्वीप था। यहाँ बहुत से तपस्वी रहते थे। ब्रह्मद्वीपिका नाम की जैन श्रमणो की शाखा का उल्लेख कल्पसूत्र मे मिलता है, इससे मालूम होता है कि यह स्थान जैनधर्म का केन्द्र रहा होगा। अचलपुर का उल्लेख आचार्य हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण मे किया है।

मुक्तागिरि निर्वाणक्षेत्र माना जाता है। १८वीं सदी के यात्रियो ने इसे शत्रुञ्जय के तुल्य तीर्थ बताते हुए यहाँ चौबीस तीर्थङ्करों के उत्तुङ्ग प्रासादों का उल्लेख किया है।

यह स्थान एलिचपुर से बारह मील दूर है। यहाँ के अधिकाश मन्दिर १६वीं सदी के बने हुए हैं।

अन्तरीक्ष पार्श्वनाथ की कथा उपदेशसप्ततिका मे आती है। यहाँ श्रीपाल का कुष्ठ दूर हुआ था।

यह स्थान आकोला से लगभग उन्नीस कोस दूर शिरपुर ग्राम के पास है।

भातकुली अतिशय क्षेत्र माना जाता है। यह स्थान अमरावती से दस मील के फासले पर है। पार्श्वनाथ की यहाँ मूर्ति है।

२ : हैदराबाद

तगरा **आभीर** देश की सुन्दर नगरी थी। आभीर देश जैन श्रमणो का केन्द्र था। यहाँ आर्य समित और वज्रस्वामी ने विहार किया था। तगरा मे राढाचार्य का आगमन हुआ था। करकण्डुचरिय मे इस नगर का इतिहास दिया हुआ है।

तगरा की पहचान उसमानाबाद जिले के तेर नामक स्थान से की जाती है।

तगरा से आठ मील पर धाराशिव है। आराधना कथाकोष में तेर नगर और धाराशिव का वर्णन आता है। यहाँ बहुत सी गुफाएँ हैं, जिन्हे राजा करकण्डु ने बनवाया था।

आजकल इस स्थान को उसमानाबाद कहते हैं।

कुल्पाक की गणना प्राचीन तीर्थों मे की जाती है। यह क्षेत्र आदिनाथ का प्राचीन तीर्थ माना जाता है। उपदेशसप्ततिका मे कुल्पाक की कथा आती है। यहाँ आदिनाथ की प्रतिमा माणिक्यदेव के नाम से प्रख्यात है।

यह तीर्थ निजाम स्टेट मे सिकन्दराबाद के पास है।

अजन्ता और एलोरा नाम की प्राचीन गुफाएँ भी इसी रियासत मे हैं। अजंता की गुफाओं मे बौद्ध जातकों के अनेक दृश्य अंकित हैं। ये गुफाएँ ईसा के पूर्व दूसरी शताब्दि से लेकर ईसवी सन् की छठी शताब्दि तक की मानी जाती है। एलोरा का प्राचीन नाम इलापुर है। यहाँ एक समूची पहाड़ी काटकर मन्दिरों मे परिवर्तित कर दी गई है, जिनमे चूने-मसाले व कील-काँटों का नाम नहीं। यह स्थान किसी जमाने मे मान्यखेट के राष्ट्रकूट राजाओं की राजधानी था। यहाँ ब्राह्मण, बौद्ध और जैनों के मन्दिर बने हुए हैं, जिनका समय ८वी शताब्दि है।

ऊखलद अतिशय क्षेत्र माना जाता है। यहाँ नेमिनाथ का मन्दिर है, प्रतिवर्ष माघ का मेला लगता है।

यह स्थान निजाम स्टेट रेलवे के मीरखेल स्टेशन से तीन-चार मील है।

आष्टे हैदराबाद रियासत मे दुधनी स्टेशन के पास है। यहाँ जैन चैत्यालय बना हुआ है।

कुंथलगिरि की गणना सिद्धक्षेत्रों मे की जाती है। यहाँ से कुलभूषण और देशभूषण मुनियों का मोक्षगमन बताया जाता है।

यह स्थान बार्सी टाउन रेलवे स्टेशन से लगभग बीस मील है।

दहीगाँव महावीर का अतिशय क्षेत्र माना जाता है। यह स्थान शोला-

पुर जिले में दिकसाल स्टेशन से लगभग बाईस मील है।

स्तवनिधि कोल्हापुर रियासत में, कोल्हापुर शहर से लगभग तीस मील है।

श्रीक्षेत्रकुम्भोज कोल्हापुर रियासत में हातकलगणा स्टेशन से लगभग चार मील है। गाँव में एक मन्दिर है।

३ : महाराष्ट्र

महाराष्ट्र के अनेक रीति-रिवाजों का उल्लेख जैन छेदसूत्रों की टीका-टिप्पणियों में मिलता है। राजा सम्प्रति ने इस देश में जैनधर्म का प्रचार किया था। लेकिन आगे चलकर मालूम होता है कि यह प्रदेश जैनधर्म का खासा केन्द्र बन गया था।

प्रतिष्ठान या पोतनपुर महाराष्ट्र की राजधानी थी। बौद्ध ग्रन्थों में पोतन या पोतलि को अश्मक देश की राजधानी कहा है।

प्रतिष्ठान महाराष्ट्र का भूषण माना जाता था। यह नगर विद्या का केन्द्र था। यहाँ श्रमण-पूजा नाम का बड़ा भारी उत्सव मनाया जाता था। जैन ग्रन्थों से पता लगता है कि यहाँ पादलिप्त सूरि ने पइट्ठान के राजा की शिरोवेदना दूर की थी। कालकाचार्य ने यहाँ विहार किया था। कहते हैं कि एक बार कालकाचार्य उज्जयिनी से यहाँ पधारे और सातवाहन (शालिवाहन) के आग्रह पर इन्द्र महोत्सव के कारण पर्यूषण पर्व की तिथि बदल कर पञ्चमी से चतुर्थी कर दी। जैन ग्रन्थों में प्रतिष्ठान को भद्रबाहु (द्वितीय) और वराहमिहिर का जन्म-स्थान माना गया है।

जिनप्रभ सूरि के समय यहाँ अट्सठ लौकिक तीर्थ थे। प्रतिष्ठान व्यापार का बड़ा केन्द्र था।

इसकी पहचान औरङ्गाबाद जिले के पैठन नामक स्थान से की जाती है।

४ : कोंकण

कोंकण देश में जैन श्रमण ने विहार किया था। यह देश परशुराम क्षेत्र के नाम से भी पुकारा जाता था। अत्यधिक वर्षा होने के कारण जैन

साधु यहाँ छतरी लगा सकते थे। यहाँ के लोग फल-फूल के बहुत शौकीन होते थे। यहाँ गिरियज्ञ नाम का उत्सव मनाया जाता था। कोंकण की अटवी का उल्लेख जैन ग्रन्थों में आता है। मच्छर यहाँ बहुत होते थे। यहाँ यूनान के व्यापारी व्यापार के लिए आते थे।

पश्चिमी घाट और समुद्र के बीच के हिस्से को कोंकण कहा जाता है।

कोंकण की राजधानी शूर्पारक थी। इस नगर का उल्लेख महाभारत मे मिलता है। पञ्च पाण्डव प्रभास जाते हुए यहाँ ठहरे थे। आचार्य वज्रसेन, आर्य समुद्र और आर्य मगु ने यहाँ विहार किया था। यहाँ बहुत से व्यापारी रहते थे और भृगुकच्छ तथा सुवर्णभूमि तक व्यापार के लिए जाते थे।

शूर्पारक की पहचान बम्बई इलाके के ठाणा जिले में सोपारा स्थान से की जाती है। आजकल यहाँ बडी हाट लगती है।

नासिक्यपुर (नासिक) कोंकण का दूसरा प्रसिद्ध नगर था। यह स्थान गोदावरी के किनारे है और ब्राह्मणो का परम धाम माना जाता है।

यहीं पर दण्डकारण्य था, जहाँ रामचन्द्र जी आकर रहे थे। जैन ग्रन्थो मे इसका दूसरा नाम कुंभकारकृत बताया गया है। इस नगर के नाश होने की कथा रामायण, जातक तथा निशीथचूर्णि मे आती है।

तुंगिय पर्वत पर राम बलभद्र के मोक्ष होने का उल्लेख प्राचीन जैन ग्रन्थों मे आता है। दिगम्बर परम्परा के अनुसार यहाँ से राम, हनुमान, सुग्रीव आदि निन्यानवे कोटि मुनि मोक्ष पधारे।

यह क्षेत्र मनमाड स्टेशन से साठ मील दूर है। आजकल इसे माँगी-तुंगी कहते हैं।

नासिक से पाँच-छह मील के फासले पर गजपथा नामक तीर्थ है। यहाँ से सात बलभद्र और यादव आदि मुनियो का मोक्ष होना बताया जाता है, लेकिन यह क्षेत्र काफी अर्वाचीन जान पडता है।

५ : आन्ध्र

आन्ध्र देश में राजा सम्प्रति ने जैन धर्म का प्रचार किया था। बौद्ध

जातकों मे आन्ध्र की राजधानी का नाम अन्धपुर बताया गया है। अन्धपुर नगर का उल्लेख जैन ग्रन्थो में आता है। यह नगर तेलवाह नदी पर था।

महाराष्ट्र के पूर्व-दक्षिण तेलुगु भाषा का समूचा क्षेत्र आन्ध्र या तेलगण देश कहा जाता है।

वनवासी नगरी का उल्लेख ब्राह्मणों की हरिवंश पुराण में आता है। जैन ग्रन्थों के अनुसार यहाँ ससय और भसय नामक राजकुमारों ने अपनी बहन सुकुमालिया के साथ जैन दीक्षा ली थी।

छठी शताब्दि तक यह नगर कदंबों की राजधानी रही। आजकल यह स्थान उत्तर कनाडा में सिरसी ताल्लुका में वरदा नदी के बाँये किनारे इसी नाम से मौजूद है। यहाँ प्राचीन अभिलेख मिले हैं।

६ : गोल्ल

गोल्ल देश के अनेक रीति-रिवाजो का उल्लेख जैन चूर्णि ग्रन्थों में मिलता है। जैन अनुश्रुति के अनुसार चन्द्रगुप्त का मंत्री चाणक्य यहीं का रहने वाला था। गोल्लाचार्य का उल्लेख श्रवणबेलगोला के शिलालेखों में आता है।

इस देश की पहचान गुन्टूर जिले की गल्लरु नामक नदी पर गोलि स्थान से की जा सकती है। यहाँ बहुत से शिलालेख उपलब्ध हुए हैं, इससे भी इस स्थान की प्राचीनता प्रकट होती है।

७ : द्रविड़

द्रविड़ (दमिल) तमिल का संस्कृत रूप है। द्रविड में पहले चोल, चेर और पाण्डय देश गर्भित थे। हुअन-साँग के समय द्रविड के उत्तर में कोंकण और धनकटक तथा दक्षिण मे मालकूट था। जैन ग्रन्थों से पता लगता है कि आरंभ मे यहाँ जैन साधुओं को वसति (उपाश्रय) आदि का कष्ट होता था।

काञ्चीपुर द्रविड की राजधानी थी। बृहत्कल्पभाष्य से पता लगता है कि यहाँ नेलक नाम का सिक्का चलता था। यहाँ के दो नेलक कुसुमपुर (पटना)

के एक नेलक के बराबर होते थे। हुअन-साँग के समय यह नगर बौद्धों का केन्द्र था। स्वामी समतभद्र की यह जन्मभूमि थी। आठवीं शताब्दि में जैनों का यहाँ बहुत प्रभाव था। काँचीपुर चोल की राजधानी रही।

काचीपुर की पहचान मद्रास सूबे के काँजीवर नामक स्थान से की जाती है।

८ : कर्णाटक

कर्णाटक का पुराना नाम कुन्तल है। महाराष्ट्र के दक्षिण में कनाड़ी भाषा का क्षेत्र कर्णाटक कहा जाता है। इसमे कुर्ग, मैसूर आदि प्रदेश सम्मिलित थे।

जैन ग्रन्थों मे **कुडुक्क** देश का अनेक जगह उल्लेख आता है। राजा सम्प्रति के समय से इस देश मे जैन धर्म का प्रचार हुआ। व्यवहारभाष्य में कुडुक्क आचार्य का उल्लेख आता है।

कुडुक्क की पहचान आधुनिक कुर्ग से की जा सकती है। इस प्रदेश को कोडगू भी कहते है।

कर्णाटक मे श्रवणबेलगोल दिगम्बर जैनों का प्रसिद्ध तीर्थ है। इसे जैनबद्री, जैन काशी अथवा गोम्मट तीर्थ भी कहा जाता है। यहाँ बाहुबलि स्वामी की सत्तावन फीट ऊँची मनोज्ञ मूर्ति है, जो दस-बारह मील से दिखाई देने लगती है। जैन मान्यता के अनुसार भद्रबाहु स्वामी और उनके शिष्य सम्राट् चन्द्रगुप्त मुनि ने यहाँ आकर तप किया था। यहाँ लगभग पाँच सौ शिलालेख मौजूद हैं। विन्ध्यगिरि और चन्द्रगिरि नामक यहाँ दो पर्वत हैं। इस तीर्थ की स्थापना राजमल्ल नरेश के राजमंत्री सेनापति चामुण्डराय ने ईसवी सन् ९८३ के लगभग की थी।

मूडबिद्री होयसल काल मे जैनियों का मुख्य केन्द्र था। यहाँ अनेक मदिर और सुन्दर स्थान हैं। यहाँ पर पुरुष-प्रमाण बहुमूल्य प्रतिमाएँ हैं; प्राचीन ग्रन्थो के यहाँ भडार हैं।

कारकल मूडबिद्री से दस मील है। यहाँ बाहुबलि की विशाल प्रतिमा और

सुन्दर मान-स्तभ है। इस मूर्ति को सन् १४३२ में कारकल नरेश वीर पाड्य ने निर्माण कराया था।

वेणूर जैनों का केन्द्र था। कभी यहाँ अजलिर वश के जैन राजाओं का राज्य था। उनमें से वीर निम्मराज ने सन् १६०४ में बाहुबलि स्वामी की विशाल प्रतिमा बनवाई थी। यह स्थान मूडबिद्री से बारह मील और कारकल से चौबीस मील है।

मथुरा या दक्षिण मथुरा का उल्लेख प्राचीन जैन सूत्रों में आता है। इसे पाडु मथुरा भी कहते थे। कृष्ण के कहने से यहाँ पच पांडव आकर रहे थे। यह स्थान व्यापार का बड़ा केन्द्र था। पुराने जमाने में यहाँ के पडित प्रसिद्ध होते थे।

मथुरा की पहचान मद्रास सूबे के उत्तर में मदुरा नामक स्थान से की जाती है।

शब्दानुक्रमणिका

न

प